भगत सुमेरचंद्र जी वर्णी

(एक परिचय)

सम्पादक
डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य पी-एच० डी०, सागर

प्रकाशक
मुन्नालाल नरेशचन्द्र व सुरेशचन्द्र जैन, जगाधरी
(बाहुबली मेटल एण्ड स्टील उद्योग, जगाधरी)
फोन नं० ४५६७
(विपल मैटल प्रोडक्ट, जगाधरी)
फोन नं० ४२८३

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

माननीय बन्धुगण,

हर्ष का अवसर है कि आज मुझे प्रात-स्मरणीय पूज्य पिता जी के जीवन-परिचय रूप यह पुस्तक अर्पणकरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

बहुत दिनों से मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि अपने तथा समाज के हितार्थ पूज्य पिता जी का आदर्श जीवन-चरित्र प्रकाशित किया जाय।

मैं पूज्य पं० पन्नालाल जी धर्मालंकार काव्यतीर्थ, मधुवन व पं० शिखरचन्द्र जी न्यायतीर्थ ईसरी व पं० बंशीधर जी न्यायतीर्थ जियागंज व सतों की सवेदना पत्रावली व शोक प्रस्ताव जो विविध स्रोतों से आये हुये है, सब ही महानुभावों का आभारी हूं। विशेषकर पूज्य गुरुवर १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज जी का आभारी हूँ जिनकी कृपा और सदुपदेश की यह महिमा है कि पूज्य पिता जी ने समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर को त्याग कर अपनी भावना व लक्ष्य को पूर्ण किया तथा आत्मकल्याण किया। मैं पूज्य पन्नालाल जी साहित्याचार्य पी-एच० डी० सागर वालों का भी आभारी हूँ जो आपने इस जीवन परिचय को क्रम से शोध कर संपादन किया।

पुस्तक छापने में गीता प्रिंटिंग एजेन्सी के मालिक श्री सत्य-नारायण ने बड़ी तत्परता का परिचय दिया तथा अन्य जिन महानुभावों ने भी किसी प्रकार का सहयोग दिया उन सभी का आभारी हूँ।

दि० १८ अगस्त १९८०

मुन्नालाल जैन

श्री पू० भगत सुमेरचन्द जी वर्णी, जगाधरी
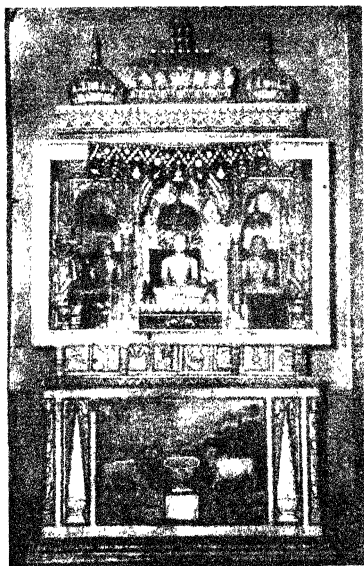
श्री भगत सुमेरचन्द जी जैनी की स्मृति में श्री शकुन्तला देवी धर्मपत्नी
श्री मुरारीलाल जी द्वारा निर्मापित वेदी
निर्माण वर्ष वीर नि० सं० २४८७ सन् १९६०

श्रद्धेय भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी
: एक परिचय :

श्रद्धासुमन

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी, पूज्यवर गणेशप्रसाद जी वर्णी के साथ ईसरी में रहते थे और विहार काल में उनके साथ ही विहार करते थे। यद्यपि वर्णी जी सागर से दूर ईसरी में रहते थे तथापि प्रसगवश वर्ष में एकाधबार उनके दर्शन हो ही जाते थे। उनके दर्शन के प्रलोभन से कोड़रमा, गया, रांची तथा गिरीडीह आदि स्थानो से यदि पर्यूषण पर्व आदि का कोई निमन्त्रण आता था तो मैं शीघ्र ही स्वीकृत कर लेता था।

वर्णी जी के पास आते-जाते रहने से भगत जी से भी अच्छा परिचय हो गया था। पूज्य वर्णी जी को जीवन गाथा द्वितीय भाग की पाण्डुलिपि तैयार कर उन्हें सुनाने के लिए ईसरी गया था। पाण्डुलिपि सुनाते समय जो पंक्तियां मुझे अत्यन्त रुचिकर लगीं मैं उन्हें मुद्रण के समय भिन्न टाइप में कंपोज कराने के उद्देश्य से लाल पेन्सिल से अनुरञ्जित करना चाहता था। दो-तीन बार अपना बेग झाड़कर देख लिया पर उसमें लाल पेन्सिल नहीं निकली। पास में बैठे भगत सुमेरचन्द्र जी अपने पास की लाल पेन्सिल का एक टुकड़ा झट से उठा लाये और बोले—यह लीजिए, लाल पेन्सिल। पांच-छः दिन तक पाण्डुलिपि का वाचन चलता रहा तथा भगत जी आदि त्यागीवर्ग वर्णी जी के साथ उसे मनोयोग से सुनते रहे।

ईसरी से वापिस आते समय मैं भगत जी की पेन्सिल वापिस करना भूल गया। सागर आने पर मैंने भगत जी को लिखा कि आपकी पेन्सिल भूल से मैं वापिस नहीं कर पाया। पत्र के उत्तर में भगत जी

ने लिखा कि आपकी निर्मलता प्रशंसनीय है, पेन्सिल कोई बड़ी चीज नहीं है। इस विकल्प को आप मन में न रक्खें।

पूज्य वर्णी जी के साथ भगत जी सागर भी पधारे थे। यहां गुलाबचन्द्र जी जौहरी के बाग में उस समय उदासीनाश्रम खुला था। वर्णी जी ने भगत जी को उसका अधिष्ठाता बनवाया। एक दिन हमारे घर पर वर्णी जी के साथ कुछ आगन्तुक विद्वानों और त्यागी वर्ग का निमन्त्रण था। भगत जी भी आये थे। हमारे यहां बुन्देलखण्ड के रिवाज के अनुसार कच्ची-पक्की दोनों प्रकार की रसोई बनी थी अर्थात् पूड़ी, लड्डू तथा दाल भात आदि। भोजन के उपरान्त भगत जी बोले—हमारे प्रान्त में तो सुबह कच्चा ही भोजन बनता है और शाम को पक्का ही परन्तु यहां कच्चा-पक्का साथ-साथ बनता है। मैं कुछ कहूँ कि वर्णी जी कहने लगे कि यहां त्यागी वर्ग अधिकाश प्रातः काल ही भोजन करते है शाम को नहीं। यदि प्रातः काल कच्चा ही भोजन बनाया जावे तो वे पक्के भोजन से वञ्चित रह जावें। अत यहां सुबह-शाम दोनों समय का भोजन एक साथ बनाया जाता है। भगत जी इस समाधान को सुनकर बोले, अच्छा यह बात है। अब समझा मैं कच्चे-पक्के भोजन की बात।

एक बार वर्णी जी नैनागिरि पैदल चल रहे थे साथ में भगत जी तथा अन्य भी कुछ लोग थे। बण्डा से दलपतपुर तक छः-सात मील के मार्ग में मैंने भी पैदल चलने का विचार किया। भगत जी के चप्पल की एक कील निकल गई थी जिससे उन्हे चलने में असुविधा हो रही थी। कुछ दूर चलने पर सड़क पर लोहे की एक कील पड़ी दिखी, भगत जी ने उसे उठा कर चप्पल को ठीक करना चाहा परन्तु भगत जी ने ज्यों ही वह कील उठाई कि मैंने हँसते-हँसते कहा—निहितं वा पतितं वा—भगत जी ने उसे सुनकर तत्काल वह कील फेंक दी और बोले—गलती हो गई। वर्णी जी इस बात से हँस पड़े।

भगत जी तत्त्व-प्रेमी और मन्द कषायी जीव थे। जब भी आप से मिलना होता था तब बड़े प्रेम से बाल बच्चों तक की कुशल पूछते थे।

गिरीडीह में आपका समाधिमरण हुआ। अधिकांश देखा गया है कि जिनकी कषाय मन्द होती है उनका मरण भी शान्त भाव से

होता है। भगत जी के सुपुत्र श्री मुन्नालाल जी जगाधरी वालों की इच्छा हुई कि पूज्य पिता जी का परिचय प्रकाशित करूँ और उसके लिए उनके पास जो सामग्री थी उसे लेकर वे सागर आये। सामग्री में तेरापथी कोठी के मैनेजर स्व० पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ थे तथा पं० वंशीधर जो न्यायतीर्थ जियागंज आदि के लेख थे सन्तों तथा परिचितजनों के संवेदनापत्र, शोक-प्रस्ताव तथा श्रद्धाञ्जलि पत्र आदि थे। मैंने उन्हें देखकर व्यवस्थित किया तथा क्रम से संजोकर प्रकाशन के योग्य बनाया।

मैंने भाई मुन्नान्लाल जी से यह कहा कि भगत जी के विषय की सामग्री देना तो उचित है ही इसके साथ यदि पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के द्वारा लिखित समाधि मरण सम्बन्धी पत्र भो प्रकाशित करा दिये जावें तो पुस्तक उपयोगी हो जायगी। भाई मुन्नालाल जी ने कहा कि सब आपके ऊपर छोड़ता हूं, जैसा आप उचित समझें इस कार्य को पूरा कर दीजिए। उनकी स्वीकृति पाकर मैंने वर्णी स्नातक परिषद् सागर से प्रकाशित वर्णी अध्यात्म-पत्रावली प्रथम भाग के अन्त में दिये हुए समाधिमरण पत्रपुञ्ज से कुछ पत्र सकलित कर लिए। कुछ पत्र सर सेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर के द्वारा भी ब्र० छोटे-लाल जी के तत्त्वावधान में प्रकाशित अध्यात्म-पत्रावली से भी लिए। ये पत्र पूज्य वर्णी जी ने भगत जी को उनके नामोल्लेख पूर्वक लिखे थे। इस पुस्तक मे श्रीमान् शिवलाल जी कृत समाधिमरण तथा भगत जी को अत्यन्त प्रिय इष्ट प्रार्थना भी दी जा रही है। एक बार अपनी पौत्री प्रेमलता के पाणिग्रहण के प्रसंग पर शुभाशीर्वाद के रूप में एक पुस्तिका छपवाई थी। स्त्रियों की शिक्षा के लिए उपयोगी जान अन्त में उसे भी प्रकाशित कर रहा हूँ।

इस पुस्तक के लेखकों में श्री पं० पन्नालाल जी धर्मालंकार और पं० वंशीधर जी न्यायतीर्थ अब जीवित नहीं हैं। समवेदना पत्र और श्रद्धाञ्जलियां भेजने वाले महानुभावों में कितने इस समय विद्य-मान हैं यह मैं नही जानता? पुस्तक के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हुआ फिर भी जिन महानुभावों ने भगत जी के प्रति धर्मानुरागवश जो शब्दावली भेजी है संपादक के नाते मैं उन सब के प्रति आभारी हू। भाई मुन्नालाल जी और नरेशचन्द्र व सुरेशचन्द्र सुपुत्र श्री मुन्ना-

लाल धन्यवाद के पात्र हैं जो पूज्य पिता जी व दादा जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ इस परिचय पत्रिका का प्रकाशन करा रहे हैं। समाधिनिष्ठ भगत जी के जीवन चरित्र से सद्‌गृहस्थ भी शिक्षा ग्रहण करें और अपना शेष जीवन संयमाचरण में व्यतीत करें। यह पुस्तक प्रकाशन का प्रयोजन है। अन्त में 'मेरी भी समाधि हो' इस कामना के साथ पूज्य भगत जी के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

सागर
२०-३-८०

विनीत :
पन्नालाल साहित्याचार्य
सम्पादक

जीवन झांकी

□ स्व० पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ, धर्मालंकार, मधुवन

इस परिवर्तनशील संसार में कुछ ऐसे भी महापुरुष उत्पन्न होते है जो अपनी प्रतिभा और पुरुषार्थ के बल पर देश, समाज तथा आत्मकल्याण के मार्ग में अग्रसर होते रहते हैं। जैनधर्म ऐसे जीवद्रव्य की सत्ता को स्वीकृत नही करता जो सदा से कर्मकालिमा से रहित शुद्ध निरञ्जन हो। किन्तु इसके विपरीत यह स्वीकृत करता है कि अनादिकालीन अशुद्ध जीव आत्मपुरुषार्थ के द्वारा कर्मकालिमा को नष्ट कर निरञ्जन-परमात्मा बनता है। कालक्रम से हुए अनन्तानन्त चौबीस तीर्थंकर भी अशुद्ध से शुद्ध पर्याय को प्राप्त हुए है।

अशुद्ध से शुद्ध बनने का पुरुषार्थ सम्यग्दर्शन होने पर ही शुरू हो पाता है उसके बिना नहीं। उसका कारण भी यह है कि जब तक कर्म नोकर्म और भावकर्म से भिन्न ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव वाले आत्मा के अस्तित्व का निश्चय नही होता तब तक पुरुषार्थ कैसा ? सम्यग्दृष्टि निश्चय करता है कि मैं एक स्वतन्त्र जीव द्रव्य हूं। यद्यपि वर्तमान में मेरी अशुद्ध पर्याय चल रही है और उसके कारण मैं चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण कर रहा हूँ तथापि यह सब मेरा स्वभाव नहीं है, कर्मोपाधि जन्य होने से औपाधिक भाव है, इसे नष्ट किया जा सकता है। इसी निश्चय के आधार पर वह आत्मसाधना के मार्ग में अग्रसर होता है।

भगत श्री सुमेरचन्द्र जी वर्णी भी इसी श्रेणी के महानुभाव थे जिन्होंने आत्मस्वरूप को समझ श्रुत-परिचित और अनुभूत भोगों से विरक्त हो आत्मकल्याण का मार्ग अङ्गीकृत किया। धीरे-धीरे गृहस्थी के जंजाल से उन्मुक्त हो दिगम्बर मुद्रा में समाधिमरण किया।

जन्म और वंश परिचय :

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का जन्म जगाधरी निवासी श्री लाला मूलराज जी अग्रवाल और उनकी धर्मपत्नी श्री सोनाबाई जी, (इस धर्मात्मा दम्पती) से हुआ था। लाला मूलराज़ जी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तथा अपने सद्गृहस्थोचित आचार-विचार से पंजाब प्रान्त में पर्याप्त ख्याति प्राप्त थे। किराना के व्यापारी थे और प्रामाणिक लेन देन के कारण जनता की श्रद्धा के केन्द्र थे।

बाल्यावस्था में सुमेरचन्द्र अत्यन्त चपल एवं नटखटी थे अतः तीसरी कक्षा की उर्दू भर पढ़ सके। व्यापारी वर्ग के लिए उस समय इतना ज्ञान पर्याप्त समझा जाता था। स्कूल छोड़कर आप दुकान पर बैठने लगे। धीरे-धीरे व्यापार के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ और उसके फलस्वरूप माल लेने के लिए कानपुर तथा दिल्ली आदि की मण्डियों में जाने लगे। प्रतिभा एक ऐसा प्रकाश-पुञ्ज है कि उसे जिस दशा में प्रसारित किया जाय वह उसी दिशा को आलोकित करने लगता है। भगत सुमेरचन्द जी की प्रतिभा का प्रकाश-पुञ्ज व्यापारिक दिशा में इतनी तन्मयता से प्रसारित हुआ कि वे एक प्रसिद्ध व्यापारी हो गये। पुत्र को कुशल व्यापारी समझ पिता मूलराज जी अपने आपको भारहीन समझने लगे। भगत सुमेरुचन्द्र को जिन-पूजा, स्वाध्याय तथा अन्य धार्मिक कार्यो को अभिरुचि अपने माता-पिता से विरासत मे मिली थी इसलिए वे इन सब कार्यों को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से करते थे।

मङ्गल परिणय :—

सोलह वर्ष की अवस्था में आपका मङ्गल परिणय रामपुर मनिहारान के निवासी लाला शीतलप्रसाद जी अग्रवाल की पुण्यशीला कन्या खजलीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। भाग्य से खजलीदेवी और भगत सुमेरचन्द्र का संयोग मणि काञ्चन संयोग के समान गार्हस्थ्य धर्म को सुशोभित करने वाला सिद्ध हुआ।

धार्मिक कार्यों में विशिष्ट अभिरुचि देख जनता में आपका 'भगत जी' नाम प्रसिद्ध हो गया। इनकी प्रेरणा प्राप्त कर जगाधरी की समाज भी जैनधर्म को प्रभावना के कार्यों में अग्रसर रहती थी। खजलीदेवी से दो पुत्रों का जन्म हुआ। गृहस्थी का कार्य आनन्द से

चल रहा था कि साधारण-सी बीमारी के बाद खजलीदेवी का स्वर्गवास हो गया। उस समय भगत सुमेरचन्द्र की अवस्था सिर्फ २७ वर्ष की थी अत: पिता मूलराजजी ने इनके द्वितीय विवाह का आयोजन किया। पिता का आग्रह देख भगत सुमेरुचन्द्र जी ने नम्र शब्दों में निवेदन किया कि लाला जी! विवाह के फलस्वरूप आपके दो नयनाभिराम पोते उपस्थित हैं अत: मुझे पुन: कीचड़ में न फंसवाइये। जिस बन्धन से एक बार मुक्त हो गया अब उसी बन्धन में नहीं पड़ना चाहता हूँ। 'इन बालकों को सुशिक्षित कर कार्यवाहक बनाऊं', यही क्या कम भार मेरे सिर पर है?

पुत्र का यह उत्तर प्राप्त कर लाला मूलराज गम्भीर विचार में पड़ गये। अपने बड़े पुत्र ज्योतिप्रसाद से विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि सुमेरचन्द्र का विवाह नही किया गया तो यह गृहस्थी से विरक्त हो जायगा और फलस्वरूप सारा व्यापार चौपट हो जायगा। लाला मूलराज व्यापारी मनोवृत्ति के थे। फल यह हुआ कि उन्होंने मित्रों से दबाव डलवाकर कालका निवासी लाला मक्खनलाल जी की पुत्री कस्तूरीबाई के साथ भगत सुमेरुचन्द्र का दूसरा विवाह कर दिया।

दूसरा विवाह होने के बाद इनके मन में एक शल्य कांटे की तरह चुभने लगी। विमाता, प्रथम पत्नी के बच्चों के साथ कैसा कटुक बर्ताव करती है? यह वे अन्य घरों में देख चुके थे। अत: सर्वप्रथम इन्होंने इसी शल्य का निराकरण करने के लिए पत्नी से अनुरोध किया कि यदि तुम मुझे गृहस्थी में देखना चाहती हो तो इन दोनों बच्चों को अपना बच्चा समझ कर प्यार करना अन्यथा ऐसा न हो कि तुम्हें पीछे पछताना पड़े। सुश्री कस्तूरीबाई खानदानी लड़की थी अत: उसने पति के इस अनुरोध को ध्यान से सुना ही नहीं—जीवन भर उसका पालन किया। उसने कभी इन पुत्रों को दूसरा नहीं समझा। भाग्य की बात कि कस्तूरीबाई से किसी पुत्र-पुत्री का जन्म नहीं हुआ। पत्नी के सरल और सहृदय व्यवहार से भगत सुमेरुचन्द्र जी नि:शल्य होकर व्यापार और समाज के कार्यों में संलग्न रहने लगे।

गार्हस्थ्य जीवन की विशेषताएं :

भगत सुमेरचन्द्र जी न केवल जैन समाज के प्रीतिपात्र थे किन्तु जगाधरी की अन्य सभी जनता इनके साथ प्रीति और श्रद्धा का

व्यवहार करती थी। इसका कारण यही था कि आपके व्यवहार में सचाई, वाणी में स्पष्टवादिता और सत्कर्मों में अद्भुत साहस था। एक बार सरकारी आज्ञा से शहर के कुत्ते मारे जाने लगे। विषाक्त मिठाई खाकर कुत्ते जब सड़क की पटरियों पर छटपटाते हुए प्राण छोड़ने लगे तब इनका हृदय द्रवीभूत हो गया इस हिंसा को रोकने के लिये वे एक शिष्ट मण्डल को लेकर कलैक्टर के पास गये। कलैक्टर ने इनकी बात को ध्यान से सुना तथा अहिंसा को बहाल देते हुए कहा कि जिन कुत्तों के गलेमें पालतू कुत्तों के सबूत का पट्टा होगा उन्हे नही मारा जायगा। इस आधार पर जगाधरी के सभी कुत्तों के गले में आपने अपने खर्च से पट्टे डलवा दिये। भगत जी के इस कार्य से जनता के हृदय में आपके प्रति आदर का भाव बढ़ गया।

आप कांग्रेस के कार्यों में भी सदा अग्रसर रहते थे। स्पष्ट-वक्ता होने के कारण शासन के अत्याचारों की खूब आलोचना किया करते थे अतः जगाधरी की जनता ने आपको नगर कांग्रेस कमेटी का उपाध्यक्ष निर्वाचित किया था। आपके उत्साह, साहस, देशप्रेम और सत्कर्मों से कांग्रेस का स्तर देशोत्थान और देश जागरण में सदा बढ़ता रहा।

सामाजिक बुराइयाँ दूर करने की ओर भी आपका सदा ध्यान रहता था। एक बार चूड़ी पहिनाने वाले मुसलमान चूड़ीगिरी के असभ्य व्यवहार से आपको बड़ा कष्ट हुआ। उसके विरोध में आपने नवयुवकों का संगठन कर कांच की चूड़ियों की दुकान खुलवाई और अपने साथियों को लेकर घर-घर महिलाओं को चूड़ियाँ पहिनाने की व्यवस्था कर दी। फलतः हिन्दू युवकों की झिझक मिट गई और उन्होंने घर-घर जाकर चूड़ियाँ पहिनाने का धन्धा स्वीकार कर लिया। यह बड़े साहस और संरक्षक मनोबल का प्रयत्न था।

निवृत्ति की ओर :—

भगत जी की दूसरी पत्नी ने भी जब तेंतीस वर्ष की अवस्था में देहोत्सर्ग किया तब उन्हें निश्चय हो गया कि मैं संसार के भोग भोगने के लिये नहीं आया हूँ। मेरा भाग्य मुझे आत्मसाधना के लिए प्रेरित कर रहा है। उसने मुझे दो बार स्त्री के बन्धन से मुक्त किया है अतः यह आत्महित साधन का सुअवसर है। दोनों लड़के समझदार हो चले

हैं उन्हें व्यापार में लगा कर आत्महित का मार्ग अंगीकृत करना चाहिये। यह सब विचार कर आपने अपने बड़े भाई ज्योतिप्रसाद जी से कहा कि भाई साहब ! दुकान का काम तो आप सम्हालते ही हैं और दोनों लड़के आपकी आज्ञा में हैं। अब आप मुझे अवकाश दे दें तो मैं निराकुल होकर धर्मसाधन करूँ। ज्योतिप्रसाद जी ने तीसरे विवाह का प्रस्ताव रक्खा परन्तु भगत जी को वह रुचिकर नहीं हुआ। दोनों हाथों से अपने कान पकड़ कर बोले अब तीसरी बार गलती नहीं करूंगा।

भगत जी का समय जिनेन्द्रपूजन, स्वाध्याय तथा धर्म की प्रभावना में विशेष रूप से बीतने लगा। शक्ति के अनुसार अनेक नियमों का पालन करने लगे। वे सदा सत्सग की खोज में रहते थे कि कोई ऐसे महानुभाव का समागम प्राप्त हो जिससे मेरी विरक्ति का परिणाम वृद्धिङ्गत होता रहे।

दैनंदिनी के पृष्ठों पर उभरी हुई भगत जी की भव्य भावना :

भगत जी जब कभी अपने मनोभाव दैनंदिनी में अङ्कित किया करते थे। निम्नाङ्कित पंक्तियों में उनका विरक्तभाव उभरकर सामने आ जाता है—ऊँ नमः सिद्धेभ्यः। अब मैं अपनी नियमावली लिखता हूं। मैं जो हूं एक चैतन्य आत्मा। इस पर्याय में सुमेरचन्द्र कहलाता हूं। अपने चित्त में लघुता को प्राप्त होता हुआ इस पुस्तक में याद रखने वाले अपने नियमों का तथा आइन्दा के प्रोग्राम को लिखता हूं। मेरी क्रिया कोई श्रेणीबद्ध नहीं है। कोई नियम कहीं का कोई नियम कहीं का। यथावत प्रतिभा के भाव से मेरे नियम नहीं हैं। मेरी शक्ति अल्प है और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बदला हुआ है। श्री गुरु के साक्षात् मुखारविन्द के उपदेश के बिना पञ्चमकाल में सार्थक व्रत नहीं सध सकता और श्री गुरु महाराज इस पञ्चमकाल में इस क्षेत्र में दोखते नहीं। इस वास्ते मैं पाक्षिक अवस्था को ही धारण करता हूं। प्रथम अवस्था में जो मेरी भूल हुई है उससे निन्दता हूं। जो हे सुमेरु-चन्द्र वाले आत्मा ! तूने इस संसार में मनुष्य जन्म पाया है। सेंतीस वर्ष तक कुछ आत्मानुभव नहीं किया। विषय कषाय में ही सब उम्र गमाई। अब भी क्या भूल में रहना चाहिये ? अन्त दिन की खबर नहीं किस दिन परलोक हो जावे।

अब सिर्फ इतना विचार करना बाकी है कि जैसे कोई परदेश में जाता है तो सिर्फ भोजन, लोटा, डोर, कुछ कपड़ा और थोड़ा बहुत दाम आदिक प्रयोजनभूत वस्तुएं साथ लेकर चल पड़ता है। बस, त्यों ही मुझे भी विचार करना जरूरी है। परलोक को गमन करते समय कौन सामग्री साथ जाने वाली है उसे ही लेना, बाकी सब छोड़ देना।

ऐसा विचार करने से यही ठीक जान पड़ा कि सुखदायक धर्म ही परलोक में साथ जायेगा और सब ठाठ यहीं पड़ा रह जायेगा। तू अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य का धनी चिदानन्द ! क्या यह दुर्गन्धमय शरीर रूपी कुटीर तेरे बसने का ठौर है ? हरगिज नहीं, हरगिज नहीं। तेरी बस्ती तो पवित्र, उज्ज्वल, सगुणमयी तथा सांसारिक दुःखों से रहित शिवपुरी है। उसकी इच्छा एक दिन भी नहीं की और रात-दिन मिथ्यात्व की विषम नींद में गाफिल पड़ा सोता रहा। विषयों में सुख मान-मान आशा में ही सेंतीस वर्ष बीत गये। गये हुए दिन नदी के जल के दृष्टान्तवत् उल्टे नहीं आते।

देखो कर्म की विचित्रता। ये कर्म कैसा-कैसा बदला लेते हैं और जीव को कैसा-कैसा नाच नचाते हैं। और जीव भी कैसा बेखबर होकर गाफिल रहता है। कुछ भी अपनी वर्तमान अवस्था को नहीं देखता है कि मैं कैसे घर में घुस रहा हूं ? कोई चाण्डाल के घर में भूलकर चला जाय तो एक घड़ी भी रहना अच्छा नहीं लगे परन्तु यह शरीर मलादिक से भरा है। संसार में जितने अपवित्र पदार्थ है उन सभी को एकत्रित कर यह एक मनुष्य शरीर नामक कैदघर बनाया है। यह हाड़ों का थम्भ है, मलमूत्र से भरा चमड़े से लपेटा और दुर्गन्ध से परिपूर्ण है। वर्तमान में जो कैदखाने हैं वे तो पत्थर वगैरह के हैं साफ-सुथरे हैं पर यह शरीर रूप कैदखाना हाड़ और मांस से बना है ऊपर से साफ दिखता है पर भीतर अपवित्र वस्तुओं से भरा है। यह शरीर रूपी कैदघर यदि काष्ठ या पत्थर का होता तो यह जीव कभी भी मोह नहीं तजता, बिल्कुल बेखबर रहता। देखो-देखो, कैसी भूल है ? यह जीव अपवित्र शरीर में ही पड़ा रहना चाहता है। यह शरीर तब भी स्थिर नहीं रहता, देखते-देखते नष्ट हो जाता है। इसमें ममत्वभाव रखना अच्छा नहीं। यह शरीर रूपी जेलखाने का कमरा ऐसा है अब मुझे जान पड़ा[१]।

विचार कर देखा तो जान पड़ा कि अन्य जीवों की अपेक्षा यह मेरा शरीररूपी कैदघर कुछ अच्छा है। इस संसार में बहुत से कैदी इस प्रकार के हैं कि जिन्हे अङ्गहीन दुर्गन्धमय शरीर मिला है तथा भोजनपान भी अच्छी तरह वक्त पर नहीं मिलता। कपड़ा वगैरह तो मिलना बहुत कठिन है। हमारी अवस्था उन सबसे बहुत अच्छी है। दुनियां में चाण्डाल तथा म्लेच्छ आदि जातियों की बहुतायत है। हमारे पूर्वजन्म के शुभकर्म ने इस चतुर्गतिरूप जेल में मुझे यह मनुष्य शरीररूप सुन्दर कमरा दिया है। आर्यदेश, अम्बाला जिला तथा जगाधरी शहर मिला है। उत्तम इक्ष्वाकुवंशी जैनधर्म के प्रतिपालक श्रीमान् हजारीमल के सुपुत्र मङ्गलसेन तत्पुत्र मूलराज से मेरा जन्म हुआ है। ज्योतिप्रसाद जी बड़े भाई हैं। अग्रवाल मित्तल गोत्र है जिसमें सनातन जैनधर्म के सिवाय अन्य धर्म का सम्बन्ध नहीं। इस वास्ते इस शुभ कर्म को धन्यवाद है जिसने ऐसा कमरा दिया। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म का पाना अत्यन्त कठिन है। मुझे इस वक्त सब समागम अच्छे मिले हैं। इन्द्रिय पूर्णता और भाग्य माफिक द्रव्य भी प्राप्त हुआ है। ग्रन्थों के अभ्यास से बुद्धि भी कुछ निर्मल है। दो पुत्र भी हैं। यद्यपि कर्मयोग से वीर निर्वाण संवत् २४५७ में पत्नी का स्वर्गवास हो गया है तो भी अब मुझको संतोष है। तीन बार श्री सम्मेदशिखर की यात्रा की, दो बार श्री निर्वाणक्षेत्र गिरिनार जी की यात्रा की तथा एक बार श्री जैनबिद्री वा चम्पापुरी पावापुरी की यात्रा की। श्री निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर जी की यात्रा और करूंगा।

रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग, कन्दमूल और बाईस अभक्ष्य का त्याग तथा क्रिया से भोजन करने का नियम है। यह सब है परन्तु आपदा की फांसी में लगा रहना नहीं छूटा। जब मरने का समय आया तब कुछ चेत पड़ी। अब क्या बन सकता है? अब तो झोपड़ी जलने लगने पर कुआं खोदना जैसा है। मैं हाल गिरीडोह निवासी श्रीमान् बाबा किशनलाल जी उदासीन पाक्षिक श्रावक को शतशः धन्यवाद देता हूं। मेरी इच्छा बहुत दिनों से थी कि सन्तोष ग्रहण करूं। वह मुराद पूर्ण होने का अवसर आज हाथ आया। सुख का लक्षण निराकुलता है। संसार में द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार जितनी आकुलता घटेगी उतना ही आनन्द आवेगा। ऐसा समझ कर मैंने बाबा किशन-

लाल जी को अपनी नियमावली सुनाई। श्री वीर निर्वाण संवत् २४५८ विक्रम संवत् १९९० कार्तिक सुदी षष्ठी की शुभ घड़ी में पाक्षिक श्रावक का व्रत लिया। तदनन्तर दैनंदिनी के पृष्ठों पर भगत जी के द्वारा लिए हुए नियमों का उल्लेख है।

सत्समागम की ओर :

भगत जी के हृदय में जो धार्मिक बीज थे वे समय पर पनपने लगे। आप सत्समागम की टोह में रहते थे। भाग्यवश आपको पूज्यपाद न्यायाचार्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी का सत्समागम प्राप्त हुआ। उनके संपर्क में विक्रम सं० १९९१ में आये और धीरे-धीरे घर से निकल कर ईसरी में जम गये। पूज्य वर्णी जी महाराज के रहने से ईसरी का वातावरण अत्यन्त शान्त और धर्म चर्चामय था। आत्म कल्याण के इच्छुक अनेक त्यागी वर्ग का समुदाय यहां निवास करता था।

भगत जी ने ईसरी में छहढाला से शुरू कर समयसार तक गुरुमुख से पढा, स्वाध्याय द्वारा अपना ज्ञान बढ़ाया तथा बोलने की शक्ति भी बढ़ाई। पूज्य वर्णी जी के साथ-साथ आपने अनेक जगह विहार तथा चौमासा किये और अन्त में सातवी प्रतिमा के व्रत लेकर अपने नाम के साथ 'वर्णी' पद सम्बद्ध किया। आपके लेख तथा पुस्तक आदि सुमेरुचन्द्र वर्णी के नाम से लिखे जाते थे। वर्णी जी के सत्समागम से आपकी अच्छी प्रगति हुई। आपने यश के साथ आत्मोद्धार का रस भी पाया। यही कारण था कि आपका समाधिमरण बड़ी सुन्दरता और सचेत अवस्था में हुआ। ऐसे महापुरुष का जीवन परिचय उपस्थित कर मैं अपने आपको भी सौभाग्यशाली मानता हूं। मैं चाहता हूं कि समाज के सचेता सज्जन इस जीवन झांकी से अपने पथनिर्माण में सहायता लें। मानव जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से विभूषित संयम से ही हो सकती है।

□□

नोट—समाधि का वर्णन 'भव्य समाधि दर्शन' लेख में देखिए।
—संपादक

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी

☐ श्री पं० शिखरचन्द्र जी न्याय-काव्यतीर्थ, शास्त्री, ईसरी

हमारे चरित्रनायक भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी ने पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत जगाधरी नगरी में लाला मूलराज जी की धर्मपत्नी सोनाबाई की कुक्षि से कार्तिक शुक्ला नौमी विक्रम संवत् १९५३ में जन्म लेकर सन्त परम्परा की स्वर्णशृङ्खला में एक और कड़ी जोड़कर उसमें चारचाँद लगाने की उक्ति को चरितार्थ किया था।

स्वभाव से ही नटखटी होने तथा पिता जी के लाड़-प्यार के कारण आपकी शिक्षा सिर्फ तीसरी कक्षा तक उर्दू में हो पाई थी। थोड़ा सा अंग्रेजी का भी अभ्यास था। क्रमशः आपके दो विवाह हुए। प्रथम पत्नी से दो सुपुत्र मुन्नालाल और सुमतिप्रसाद उत्पन्न हुए जो सुयोग्य शिक्षित नागरिक बनकर व्यापार कर रहे हैं। दूसरी पत्नी का निःसन्तान देहावसान हो गया।

उन दिनों देश में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था, उसमें भी आपने कांग्रेस के गण्य-मान्य कार्यकर्ता के रूप में भाग लिया। एक बार आप गिरफ्तारी के बाद निरपराध ठहराये जाकर मुक्त कर दिये गये थे। दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो जाने के बाद आपकी विरक्ति का परिणाम बढ़ गया। आपका अधिकांश समय पूजन स्वाध्याय आदि में व्यतीत होता था। भक्ति की विशेषता देख जगाधरी में आपकी 'भगत जी' नाम से प्रसिद्धि हो गयी थी।

आप कई स्थानीय पारमार्थिक संस्थाओं के पदाधिकारी थे और बड़ी तत्परता से उन संस्थाओं की देख-रेख रखते थे। जब आपकी ४५ वर्ष की आयु थी तब आपने विचार किया कि वर्ष में एक माह किसी साधु के सत्समागम में बिताया जाय, जिससे कुछ मोह

घटे और ज्ञान वृद्धि हो। इसके लिए आप कुछ दिन दिल्ली निवासी बाबा किशनलाल जी के संपर्क में रहे। इसके पश्चात् तीर्थ यात्रा के समय अनायास ईसरी में पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी के सत्संग से इतने प्रभावित हुए कि वर्ष में दो माह उनके सत्सग में रहने का नियम ले लिया। कुछ वर्ष बाद तो ईसरी मे पूज्य वर्णी जी के पास ही रहने लगे।

इसी बीच पूज्य वर्णी जी के साथ पैदल विहार करते हुए सागर आये। सागर में एक उदासीनाश्रम की स्थापना हो गई जिसके अधिष्ठाता का पद आप को सौंपा गया। सागर से जबलपुर एवं उत्तर प्रान्त की यात्रा के समय भी आप पूज्य वर्णी जी के साथ-साथ ही रहे। विक्रम संवत् २००६ का चातुर्मास दिल्ली में हुआ था। वहाँ से उत्तर प्रदेश के नगरों में घूमता हुआ यह सघ आपकी जन्म-भूमि जगाधरी में आया। इसी समय आपने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के ध्रौव्यफण्ड में १००१) की थैली भेंट की। यहाँ मे क्षेत्र हस्तिनागपुर पहुंचे। वहाँ पर आपने आठवीं प्रतिमा के व्रत लिये।

आप बड़े हो कर्मठ कार्यकर्ता थे। संघ के साथ विहार करते हुए आप ने कई जगह पाठशालाएं एवं स्वाध्यायशालाएं खुलवाई। आप व्रती वर्ग में शिथिलाचार देखने के आदी नही थे। शिथिलाचारी व्रतियों की समालोचना करने में आप कभी नहीं चूकते थे। वर्णीसंघ केइटावा चातुर्मास के पूर्व एटा में आपने एक स्कूल खुलवाया तथा भिण्ड में एक पाठशाला की स्थापना कराई। बरुआसागर में व्रती सम्मेलन का अधिवेशन कराया। उत्तर प्रदेश में विहार करने के बाद वर्णी संघ पुनः सागर आया। इसके पूर्व फिरोजाबाद में पूज्य वर्णी जी की हीरक जयन्ती का समारोह बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में हुआ था। लाला छदामीलाल जी ने अपने भव्य मन्दिर का शिलान्यास उस समय कराया था। काका कालेलकर के हाथ से पूज्य वर्णी जी को वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था। पूज्यवर श्री १०८ आचार्य सूर्य सागर जी महाराज की अध्यक्षता मे व्रती सम्मेलन हुआ था जिसमें व्रती वर्ग के उत्थान के लिए अनेक विषयों पर चर्चा हुई थी। वर्णी संघ ने सागर चातुर्मास के बाद जब पुनः ईसरी की ओर विहार किया तब भी आप साथ में थे। इस तरह आपने बुन्देलखण्ड, उत्तर-

प्रदेश, पञ्जाब, मध्यप्रदेश तथा विहार प्रान्त के अनेक नगरों में विहार कर जैनाजैन जनता में अच्छी धार्मिक जागृति उत्पन्न की।

तत्त्व निर्णय की दृष्टि से आपने एक बार ब्र० छोटेलाल जी तथा ब्र० दुलीचन्द्र जी के साथ सोनगढ़ की भी यात्रा की थी। अन्त में यत्र-तत्र विहार करने के बाद आप स्थायी रूप से पूज्यवर्णी जी के साथ ईसरी में रहने लगे। आपके पास जो भी आता था उसे आप कोई-न-कोई नियम अवश्य दिलाते थे। आपका अधिक समय अध्ययन और मनन में व्यतीत होता था। 'मोक्षमार्ग की वास्तविक दृष्टि को लोग प्राप्त कर सकें इस अभिप्राय से आपने वीरनिर्वाण संवत् २४८२ में अपने जियागंज चातुर्मास के समय आचार्य कल्प पं० टोडर मल्ल जी के मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार का प्रकाशन श्री सेठ कन्हैयालाल सुवालाल काला जियागंज से कराया था और उसकी प्रतियां फ्री वितरण करायी थीं।

अभी इस वर्ष जब वर्णी जी ग्रीष्म काल में हजारीबाग चले गये तब आप जियागंज में थे। पूज्य वर्णी जी का स्वास्थ्य विहार प्रान्त में ठीक नही रहता, इस अभिप्राय से सागर की जनता ने उन्हें पुनः सागर ले जाने की बात उठायी। वर्णी जी का विहार सागर की ओर होने वाला है, यह समाचार सुनकर आप उनसे भेंट करने के लिए ईशरी आ रहे थे। आषाढ़ शुक्ला ५ वि० स० २०१४ की रात्रि को जब आप ईसरी स्टेशन पर रात्रि के १ बजे पुल पर से आ रहे थे तब कुली को देखने के लिए पीछे मुड़े तो गलती मे पैर फिसल जाने के कारण आप धड़ाम से नीचे गिर पड़े। इससे आपके सिर तथा पैर में गहरी चोट आ गई। बहुत खून निकल जाने पर भी आपने हिम्मत नहीं हारी और अपने पास के दुपट्टा से सिर बांध कर पैदल ही आश्रम तक आये।

यहाँ के वैद्य श्री लक्ष्मीचन्द्र जी की चिकित्सा से घाव ऊपर से तो सूखा सा मालूम होने लगा किन्तु वह भीतर ही भीतर घर करता जा रहा था। जब आपके मुख पर विशेष सूजन आ गई तब पूज्य वर्णी जी ने विशेष उपचार के लिए गिरीडीह भेजा। किन्तु वहाँ भी आपको डबल निमोनिया हो गया। इस समय आप निरन्तर अरहंत सिद्ध के नामोच्चारण में लीन रहने लगे तथा आप ने अब अन्त समय समझ कर कार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसार आदि का पाठ करना

प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर मुनि पद धारण कर लिया। आप में अन्त तक आत्मतेज झलकता था। इस तरह पञ्चपरमेष्ठी का जाप करते-करते ही श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् २०१४ शुक्रवार को प्रातःकाल ६ बज कर १० मिनिट पर अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। आपके समाधिमरण के समय पं० पन्नालाल जी धर्मालंकार, पं० वंशीधर जी न्यायतीर्थ जियागंज, पं० सुखानन्द जी शास्त्री रांची और पं० लक्ष्मीचन्द्र जी वैद्य आदि गणमान्य सज्जनों ने अच्छा सहयोग दिया।

आपकी मृत्यु के पश्चात् अनेक गण्यमान्य व्रतियों और विद्वानों ने श्रद्धाञ्जलियां दीं। पूज्य वर्णी जी ने तो यहाँ तक कहा कि आज एक बहुत बड़ा कर्मठ व्रती व्यक्ति संसार से उठ गया। आप ईसरी उदासीनाश्रम के प्रमुख कर्णधार थे। इस महान् आध्यात्मिक संत का जीवन अधिकतर स्वपर हित में ही व्यतीत हुआ है। अन्त में पण्डित-मरण करके तो हमारे सामने उस संत ने आदर्श उपस्थित किया है।

□□

पूज्य भगत श्री सुमेरचन्द जी वर्णी (दि० मुनि अवस्था में)
जन्म कार्तिक शु० ६ वि० सं० १९५३ : स्वर्गवास श्रा० कृ० ७ वि. सं. २०१८

१ पं० वंशीधर जी २ श्री सज्जनकुमार (बीच में) ७ पं. पन्नालाल धर्मालं० ८ श्री खिचेडूमल
३ श्री बालचद ४ श्री मुन्नालाल श्री भगत सुमेरचन्दजी वर्णी ९ श्री लक्ष्मीचंद वैद्य १० ब्र. सुरेन्द्रकुमार
५ श्री सुखानंद ६ श्री सरदारीमल (दिगम्बर अवस्था में) ११ श्री मंगलसेन १२ श्री सोहनलाल
१३ श्री सुमतप्रसाद

भव्य-समाधिदर्शन

□ स्व० पं० वंशीधर जी न्यायतीर्थ, जियागंज

अनेक गुणसागर, चरित्रनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ, स्वात्मानुभवी, सरल-हृदय पूज्य श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी आज हमारे सामने नहीं हैं। मिति श्रा० कृ० सप्तमी शुक्रवार सं० २०१४ दिनांक १९-७-५७ को प्रात काल ६-१० पर मुकाम गिरीडीह (हजारीबाग-विहार) में हम लोगों के देखते-देखते मुनि अवस्था में आपका समाधिमरण हो गया, चूंकि अन्तिम रुग्णावस्था में लगातार आठ दिनों तक उनकी परिचर्या वैयावृत्य द्वारा अपने को कृतार्थ करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अतः उनकी दृढ़ समाधिनिष्ठा का आँखों देखा किंचित् विवरण प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य जान लिखने का उपक्रम कर रहा हूँ।

पूज्य भगत जी के थोड़े दिनों के सहवास तथा साहचर्य एवं असीम उपकारों से प्रेरित होकर ही यह कुछ पंक्तियाँ लिखी जा रही है जो उनकी महानता की द्योतक हैं।

प्रथम परिचय :

उक्त वर्णी जी से मेरा प्रथम साक्षात्कार दिसंबर १९५६ में उस समय हुआ, जब मैं तीर्थराज की वंदना करके ईसरी आया कुछ सामयिक परिस्थितियों से मेरा चित्त उद्विग्न और अशांत हो रहा था, आपने तत्काल ही बिना कुछ कहे ही मुझे अपना पत्र देकर जियागंज (मुर्शिदाबाद–बंगाल) जैन पाठशाला में अध्यापनार्थ भेज दिया और मै वहाँ कार्य करने लगा, यही मेरा उनसे आंशिक परिचय हुआ।

जियागंज में एक मास :

ज्येष्ठ मास के प्रारम्भ में जियागंज जैन समाज की अत्यधिक प्रेरणा से मैं भगत जी तथा श्री ब्र० रतनचन्द्र जो मुख्तार, सहारनपुर

वालों को लेने के लिए ईसरी आया। श्री मुख्तार जी तो अनेक कारणों से जा नहीं सके पर, आप मेरे साथ जियागंज पधारे और एक मास से कुछ अधिक वहाँ रहे। इस एक मास के साहचर्य में मैंने जो उत्कृष्ट त्यागवृत्ति, सरलता, निर्भीकता व अहर्निश आत्मचिंतन एवं स्वाध्याय तत्परता का आदर्श आपमें देखा—तो अनायास आपके प्रति हृदय मे श्रद्धा उत्पन्न हो गई। मैंने देखा—आप प्रतिक्षण स्वाध्यायादि कार्यों में प्रमादरहित होकर स्व-पर हितसाधन का निरन्तर प्रयत्न करते हैं। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते, लोकैषणा से तो आप सदा ही दूर रहते हैं निर्लोभता इतनी कि यदि एक कार्ड की जरूरत होने पर कोई दो कार्डदेकर कितना ही कहे कि दूसरा फिर काम आ जायेगा—आप रख लीजिए परन्तु कभी भी आप उसे अपने पास नहीं रखते। मैं तो वास्तव में इस थोड़े से सहवास मे आपका अनन्य भक्त हो गया।

पूज्य वर्णीजी के दर्शनार्थ ईशरी आना और पुल पार करते हुए चोट लगना :

ग्रीष्म में पूज्यपाद प्रात स्मरणीय क्षुल्लक श्री १०५ गणेश-प्रसाद जी वर्णी महोदय ईशरी से हजारीबाग पधारे हुए थे। वहाँ सागर, जबलपुर, ललितपुर आदि स्थानों के प्रमुख सज्जन पूज्य वर्णी जी को लिवाने के लिए प्रार्थना करने आये। पूज्य श्री का विचार भी उधर जाने का हुआ—चूकि विहार प्रांत की जलवायु अनुकूल न होने से स्वास्थ्य अत्यधिक क्षीण हो रहा था। संभवतः बुन्देलखंड को जल-वायु अनुकूल होने से कुछ स्वास्थ्यलाभ हो सके, ऐसी भावना थी। अतः जब उनके उधर जाने का कुछ-कुछ विचार हो रहा था तव ईसरी चलकर निर्णय करने का निश्चय हुआ, तदनुसार वे ईशरी आ गये। लेकिन वहाँ कलकत्ता, रांची, कोडरमा, गया आदि नगरों से आए हुए प्रतिष्ठित सज्जनो के हार्दिक स्नेह ओर भक्ति के कारण सागर, जबलपुर जाने का विचार स्थगित हो गया। जब इसकी सूचना जियागज भगत जी के पास पहुंची, तो आपका विचार श्री वर्णी जी के दर्शनार्थ ईसरी आने का हुआ। जियागज की धर्मप्राण समाज ने भगत जी से जियागंज में ही चातुर्मास करने का अत्यधिक आग्रह किया, परन्तु आपने प्रथम वर्णी जी के दर्शन करके उनकी आज्ञानुसार पुनः जियागंज आने का वचन दिया और ईसरी आये, मैं पहुंचाने को साथ आया। दैवयोग से ईसरी स्टेशन पर पुल पर से उतरते हुए रात्रि

के अंधकार के कारण आपका पैर सीढ़ी से फिसल गया और आप कई सीढ़ियों पर लुढ़कते हुए नीचे गिर पड़े—सिर फट गया, घुटने में काफी चोट आ गई फिर भी आप साहस करके उठे और बहते हुए सिर के खून को चादर से दबाते हुए आश्रम तक आए। आश्रम में खून बन्द करने के लिए तात्कालिक साधारण चिकित्सा की गयी, खून बन्द हो गया, किसी तरह रात्रि पूरी हुई। प्रातःकाल श्री वैद्यराज पं० लक्ष्मीचंद जी ने उपयुक्त चिकित्सा प्रारम्भ कर दी, जिससे काफी लाभ प्रतीत हुआ। मेरे से कहा कि कोई चिंता नहीं है साधारण चोट है दो-चार दिन में ठीक हो जायेगी। आप अष्टाह्निका के बाद प्रतिपदा को आना। मैं चतुर्मास के लिए जियागंज चलूगा, पूज्य वर्णी जी ने आज्ञा दे दी है। अस्तु! मैं ठीक हालत देखकर वापिस जियागंज आ गया।

गिरीडीह में उपचार के लिए जाना :

चोट यद्यपि पहिले साधारण सी ही प्रतीत हुई थी और ऊपर से ठीक होती मालूम देती थी लेकिन अन्दर ही अन्दर वह विषाक्त होती गई। तीसरे-चौथे दिनपुनः मंदिर जी की सीढ़ियों पर गिर पड़े और चोट लगने से अन्दर का मवाद निकलने लगा। एकाएक सारा सिर सूज गया, आंखें बन्द हो गई, घुटने में गांठ पड़ गई, पैर हिलाना भी असंभव हो गया। जब श्री पूज्य वर्णी जी महाराज ने यह अवस्था देखी तब तत्काल ही गिरीडीह ले जाकर किसी योग्य डाक्टर से चिकित्सा कराने की व्यवस्था कर दी, और श्री ब्र० सोहनलाल जी महाराज तथा गया वाले श्री चंपालाल जी सेठी व भाई सज्जनकुमार जी भगत जी को गिरीडीह ले आये। आते ही श्री बाबू रामचन्द्र जी सेठी के सहयोग से डाक्टर को दिखाया और योग्य उपचार प्रारंभ हो गया।

जियागंज से मेरा लिवाने जाना व गिरीडीह में वैयावृत्य करना :

जब अष्टाह्निका पर्व समाप्त हुआ, तब समाज के विशेष आग्रह से भगत जी को लिवाने मैं पुनः ईसरी आया। लेकिन वहां आते ही मालूम हुआ, कि भगत जी की चोट विषाक्त हो गई थी और वे इलाज के लिए गिरीडीह गये हैं। पूज्य श्री वर्णी जी के आदेशानुसार मैं गिरीडीह आया और जब एक्सरे लिवा कर भगत जी को बाबू राम-

चन्द्र जी व ब्र० सोहनलाल जी वापिस आए, तब उनकी हालत देखकर मैं अवाक् और स्तब्ध रह गया। सारे सिर में पट्टी बंधी हुई है, पैर पत्थर हो गया है, शरीर निश्चेष्ट हो रहा है। भोजन दो दिन से बिलकुल नहीं किया, केवल थोड़ा अन्न लिया है। जैसे ही उन्होंने मुझे देखा, असाधारण स्नेह से कहा—आप चिंता न करो, मैं दो-चार दिन में बिलकुल ठीक हो जाऊंगा, और जियागंज जरूर चलूंगा! यद्यपि शरीर में असह्य वेदना थी, परंतु आप प्रसन्न चित्त थे व आत्मचिंतन में तन्मय होकर उन्नमार्थ साधन में लीन थे। मेरे पहुंचते ही ब्र० जी ईसरी चले गये। मैं भाई सज्जनकुमार जी के साथ वैयावृत्य में लग गया।

मर्ज बढ़ता ही गया,ज्यों-ज्यों दवा की :

एक्सरे परीक्षा से डाक्टर ने बताया—चिन्ता जैसी कोई बात नहीं, जो चिकित्सा हो रही है दो-चार दिन में उसी से आराम हो जायेगा। और सिर की चोट में कुछ फायदा भी दिखने लगा। सूजन कम हो गई, घाव भर गया, आंखें भी खुलने लगीं। परन्तु पैर व जांघ के ऊपर जो गांठ पड़ गई थी, उसमें रंच मात्र भी फर्क नहीं हुआ, पैर तो पत्थर से भी भारी और निश्चेष्ट होता गया। अपार शारीरिक वेदना होते हुए भी आप पूर्ण शांत थे। किञ्चिन्मात्र विषाद की रेखा भी आपके तेजोमय मुखमंडल पर कभी प्रतीत नहीं हुई। आत्मसाधना और ध्यानाराधना में प्रतिक्षण पूरी सावधानी बरतते रहे। स्वयं समय-सारादि आर्ष ग्रंथों का पाठ करना, दूसरों से सुनना, आत्मचिंतन करना, यही आपकी दिनचर्या थी। सामायिकादि क्रियाओं में कभी विच्छेद न होने देते थे। भोजन सर्वथा बंद था। थोड़ा सा फलों का रस और दूध ही बमुश्किल लेते थे। मैं भाई सज्जनकुमार जी के साथ समाज के प्रमुख बाबू रामचन्द्र जी सेठी के पूरे परिवार के सहयोग से वैयावृत्य में पूर्ण तल्लीनता से लगा रहा, लेकिन उनकी स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गयी। श्री बाबू बालचन्द जी कोछल, पं० पन्ना-लाल जी धर्मालंकार, पं० सुखानंद जी रांची व बाबू जगतप्रसाद जी डालमियानगर की धर्मपत्नी भी यथायोग्य परिचर्या में सहयोग देते रहे। उदासीनाश्रम ईसरी के ब्रह्मचारी भी आते-जाते रहे। उपचार में उचित तत्परता बर्तते हुए भी स्थिति सुधरी नहीं, उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गयी।

वर्णी जी के प्रति भक्तिभाव :

पूज्य वर्णी जी को आप से विशेष धर्मानुराग था। प्रतिदिन आश्रम से किसी न किसी ब्रह्मचारी को भेजकर आपका स्वास्थ्यवृत्त मालूम करते रहे। और आप धर्मोत्पादक संदेश भेजते रहे। भगत जी की वर्णी जी में अगाध भक्ति थी। आपके संदेश श्रवण मात्र से गद्-गद हो जाते और श्रद्धा से मस्तक झुका लेते, आत्माराधना में दृढ़ता से प्रयत्नशील हो जाते। एक दिन जब पूज्य वर्णी जी ने स्वहस्तलिखित पत्र द्वारा स्वास्थ्यलाभ की कामना करते हुए यथावसर समाधिमरण की साधना में उपयोग स्थिर रखने का भाव प्रगट किया तो आप इतने आह्लादित हुए कि जो भी आपके पास आता, सभी से वर्णी जी की शुभकामना का उल्लेख करते और समाधिमरण में पूरी साधना की दृढ़ता प्रगट करते, मनसा वाचा कर्मणा वर्णी जी के चरणों में अपूर्व भक्तिभाव प्रगट करते।

सांसारिक ममत्व से निवृत्ति :

आप की अवस्था प्रतिक्षण क्षीण हो रही थी। वेदना वृद्धि पर थी, ऐसी परिस्थिति में आपके कुटुम्बियों को समाचार भेजने की अत्यावश्यकता थी। अत: बार-बार आपसे अपने कुटुम्बियों को बीमारी की वृद्धि का समाचार भिजवाने को पूछा गया। एक दिन ब्र० सोहन-लाल जी महाराज ने बहुत ही आग्रह किया कि आपके सुपुत्रों को आपके स्वास्थ्य का समाचार तार व पत्र द्वारा भिजवा देते हैं, परंतु आपका कुटुम्बमोह सर्वथा नष्ट हो चुका था। आपने कभी भी तार देने की अनुमति नहीं दी। प्रत्युत मेरे द्वारा एक पत्र अपने पुत्रों को साधारण चोट आ जाने व चिंता न करने का डलवा दिया। लेकिन पूज्य श्री वर्णी जी ने पत्र और तार द्वारा आपके पुत्रों के पास समाचार भिजवा दिए, जिसका उल्लेख आपसे नहीं किया गया। वास्तव में आप सांसारिकमोह से सर्वथा निर्लिप्त हो गये थे और केवलमात्र आत्मचिंतन में ही रत थे।

धार्मिक दृढ़ता :

जब ता० १७ को आपकी अवस्था भीषण देखी तब मैंने किसी प्रकार आपकी स्वीकारता लेकर डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर ने चोट के अतिरिक्त डबल न्युमोनिया का आक्रमण बताया और इंजे-

क्शन लेने की प्रेरणा की, परंतु आप ने किसी भी प्रकार इंजेक्शन लगवाना स्वीकार नहीं किया। मैंने व बाबू बालचंद जी कोछल तथा धर्मालंकार जी ने भी बार-बार आग्रह किया, समझाया कि इंजेक्शन लेने में चारित्र भंग नही होता, आप लगवा लें। यहाँ तक कहा कि पूज्य वर्णी जी ने भी आज्ञा दे दी है। यद्यपि वर्णी जी से इस विषय में पूंछा ही नही गया था। केवल इसी अभिप्राय से यह कहा था कि संभवतः वर्णी जी की आज्ञा मानकर आप इंजेक्शन लगवाना स्वीकार कर लें। लेकिन आपने कतई मंजूर नहीं किया बड़ी दृढ़ता से यही उत्तर दिया कि वर्णी जी ही नही, चाहे जो भी कहे मैं किसी तरह भी अपने चारित्र में दोष न आने दूंगा और वास्तव में चारित्रशुद्धि के लिए आप अंतिम क्षण तक सचेष्ट रहे।

अंतिम समय मुनिपद में शरीर त्याग :

आखिर वह कालरात्रि आ ही पहुंची, ता० १८ को दिनभर तबियत यथावत् रही। आज केवल दो-तीन घूंट जल के अतिरिक्त और कुछ नही लिया। सदा पाठश्रवण स्वाध्याय आत्मचितन में लगे रहे। औषधिमात्र कुछ नही ली। रात को वेदना अधिक बढ़ गई, शरीर सर्वथा शिथिल हो गया। आज शाम को ईसरी से वैद्यराज पं० लक्ष्मीचन्द जी भी आ गये थे। रात भर वैद्य जी, मै व भाई सज्जनकुमार जी पूरी तत्परता से वैयावृत्य में लगे रहे। समयसारादि ग्रंथों का पाठ सुनाते रहे। भगत जी स्वयं भी यथाशक्ति पाठ करते रहे। शरीर निवृत्ति का पूर्ण निश्चय हो गया था। अतः परिणाम किंचिन्मात्र भी शिथिल न होवे, इसके लिए हम सब पूर्ण सचेष्ट रहे। जब एक बार मैंने उनसे कहा कि आपने वर्षो समयसार का अध्ययन किया है अब अन्त समय में उसे अनुभव में उतार कर पूर्ण उत्तीर्णता का प्रयत्न कीजिए। आपने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया—पंडित जी ! मैं शत प्रतिशत उत्तीर्णता प्राप्त करूंगा। धन्य है, यह स्वात्मानुभवन की दृढ़ता ? जब रात्रि को चार बजे उन्हें लघुशंका निवृत्ति के लिए मैंने उठाया तो देखा शरीर से धाराप्रवाह पसीना निकल रहा है और शरीर बर्फसा ठंडा हो रहा है। मैंने तत्काल वैद्य जी से कहा - अधिक से अधिक दो घंटे और यह रहेंगे। अत. आप इन्हें सम्हालो, मैं और सबको बुलाकर समाधिमरण की व्यवस्था करूं। तदनुसार वैद्य जी ने उन्हें

संभाला। मैंने तत्काल गिरीडीह के समस्त स्त्री-पुरुषों व पं० पन्नालाल जी धर्मालंकार तथा प० सुखानंद जी को बुलाया, सभी पंद्रह मिनट में इकट्ठे हो गये, सैंकड़ों नर-नारी तत्काल आ गये। ईसरी से ब्रह्मचारियों को लेने के लिए उसी समय कार भेजी गई। यहां भगत जी को पूर्ण सचेतन अवस्था में वस्त्रादि बाह्यपरिग्रहों का बुद्धि-पूर्वक त्याग कराया। आजन्म आहारादि का त्याग पुर सर समाधि-मरण धारण कराया, जो आपने स्वतः हाथ जोड़कर पंचपरमेष्ठियों के स्मरण करते हुए णमोकार मंत्रोच्चारण पूर्वक अंगीकार किया और तल्लीनता से आत्मस्वरूप में स्थिर हो गये। सब लोग समाधिमरण, बारहभावना व णमोकार मंत्र का उच्च स्वर से पाठ करने लगे और ठीक प्रात काल होने पर ऐसे शांतिमय वातावरण में ६-१० पर आप की तेज स्फुरण आत्मा मानवोय औदारिक शरीर का परित्याग कर स्वर्गीय दिव्य शरीर में प्रवेश हेतु प्रस्थान कर गई। उपस्थित जन-समुदाय ने जयघोष से आकाश पूरित कर दिया। सभी इस भव्य समाधि के अवलोकन से धन्य-धन्य करने लगे। और भगत जी की आत्मा को शाति लाभ की कामना करते हुए स्वयं ऐसी समाधि प्राप्त की अभिलाषा करने लगे। वास्तव में वह दृश्य अलौकिक ही था, शब्दों मे उसके वर्णन करने की शक्ति ही नहीं। काश ! सभी ऐसी भव्य समाधि प्राप्त कर आत्मानुभवी बनने के प्रयत्न में सफल हो सकेंगे। धन्य यह समाधि, धन्य यह भगत जी, जिसने सत्यरूप में उत्तमार्थ सिद्ध किया।

अंतिम संस्कार :

अब उनके शरीर की अंत्येष्टि क्रिया यथोक्त रीति से संपन्न करने की आयोजना समाज के सहयोग से की जाने लगी। प्रचुर मात्रा में घृत, कर्पूर, नारियल, गोले तथा चंदनादि एकत्र किए गए। इतने में जो मोटर ईसरी भेजी गयी थी वह वापिस आ गई। उसमें आश्रम-वासी समस्त त्यागीगण श्रीमान् ब्र० बाबू सुरेन्द्रनाथ जी अधिष्ठाता आश्रम, ब्र० सोहनलाल जी, मंगलसेन जी, श्रद्धानंद जी, पं० सरदार-मल जी आदि तथा ब्रह्मचारिणी माता पतासीबाई जी, काशीबाई जी आदि पधारे। उन सबकी सम्मति और सहयोग से एकसुन्दर काष्ठ विमान निर्माण किया गया। जिसमें आपके शव को पद्मासन पधराया

गया। निर्जीव होते हुए भी आपकी मुखाकृति इस समय अत्यन्त मनोहारी, सौम्य ओजपूर्ण, भव्य तथा शांतिमय प्रदीप्त हो रही थी। जो भी दर्शन करता, टकटकी लगाकर निहारता ही रहता। बड़े साज-बाज और गाजेबाजे से जुलूस बनाकर शांति पाठ पढ़ते हुए विमानारूढ़ शव को श्रीमान् सेठ रामचन्द्र जी सेठी की बगीची में ले गए। वहां विधिवत् चंदनादि से चिता निर्माण कर दाहसंस्कार को प्रस्तुत हो ही रहे थे कि आपके दोनों सुपुत्र चि० लाला मुन्नालाल जी व सुमतिप्रसाद जी उच्च व तार स्वर से रुदन करते हुए आ पहुंचे। आप लोगों को जो पत्र पूज्य वर्णी जी महाराज द्वारा दिलाया गया था, उसके पाते ही दोनों भाई जगाधरी से चलकर गिरीडीह आ गए थे। यद्यपि वे अपने पिता जी के जीवित अवस्था में दर्शन नहीं कर पाए, तो भी यह उनका महान् सौभाग्य था कि संस्कार के ठीक अवसर पर वे पहुंच गए और अपने हाथों अंतिम संस्कार कर पितृऋण से उऋण हुए। यदि १५ मिनट की भी और देर हो जाती तो वे कदापि अपने पिता जी के शव का भी दर्शन नहीं कर पाते और जीवन भर संतापित रहते। यह एक असाधारण निमित्त और प्रबल संस्कार ही था कि वे दोनों दूरवर्ती पंजाब से चलकर भी यथा समय पहुचकर कृतकृत्य हो गये। अस्तु! इस समय के तीन भव्य चित्र लिए गए और यथाविधि शांति पाठ पढ़कर मंत्रोच्चारण पूर्वक शव का अग्नि संस्कार किया गया। सबके देखते-देखते उनका यह पार्थिव शरीर यद्यपि अग्नि द्वारा भस्मसात् हो गया। परन्तु उनका यश शरीर चिरकाल तक सभी के हृदयों में ज्ञान-वैराग्य का अद्भुत प्रकाश करता रहेगा। उनकी यह भव्य समाधि स्मृति समस्त ससार को सतत कल्याणकारी हो। यही शुभकामना है।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रत्यक्षदर्शी गुणानुरागी :
बंशीधर जैन न्यायतीर्थ शास्त्री
जतारा (टीकमगढ़ म० प्र०) वासी
वर्तमान–जियागज (मुर्शिदाबाद पश्चिम बग)

प्रातःस्मरणीय पू० १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी (भगत जी के गुरु)

श्री ला० ज्योतिप्रसाद जी जैन (ज्येष्ठ भ्राता श्री भगत वर्णी जी)
स्वर्गवास : सन्, १९४६

संतों की पत्रावलि :

पूज्य भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी के स्वर्गारोहण पर आगत संवेदना पत्रों की नकल

भाई मुन्नालाल जी जगाधरी

दर्शन विशुद्धि !

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी का हमसे परिचय करीब २५ वर्ष से था, बराबर हमारे साथ रहते थे एवं समयसारादि ग्रन्थो का अध्ययन करते रहते थे। आपका स्वभाव ओजपूर्ण था, निर्भीक सत्यवक्ता थे। कार्य करने में निपुण थे। ऐसे निर्मल परिणामी विशिष्ट पुरुष थे कि जिसने निर्ग्रंथ पद में उत्तमार्थ साधन कर मानव जनम को सफल किया, यह प्रशस्त एव अनुकरणीय है।

मिति श्रावण शुक्ल ५ सं० २०१४

आपका शुभचितक :
गणेशप्रसाद वर्णी, ईशरी

श्रीयुत भाई मुन्नालाल जी

योग्य धर्मस्नेह !

परच श्री ब्रह्मचारी सुमेरचंद्र जी भगत जी के देहावसान के समाचार जाने। जो जन्मता है वह मरता है तथा प्रत्येक आत्मा स्वयं, स्वयं के लिए काम आता है इत्यादि वस्तु स्थिति जानकर उन्होंने समाधिपूर्वक देह छोड़ा, इसका संतोष करके शोक को भुलाना। धर्मध्यान में विशेषरूप से चित्त लगाना। परिवार को धर्मवृद्धि, बच्चों को आशीर्वाद। भगत जी समाधिपूर्वक गये हैं तो वे स्वयं की सामर्थ्य पुरुषार्थ से शांति में होंगे ही, आप सब धैर्य और शांति के साथ रहकर जीवन सफल करें।

जैन धर्मशाला देहरादून

शुभचितक :
सहजानंद वर्णी

श्रीयुत् भाई मुन्नालाल जी,

योग्य-धर्मस्नेह !

पूर्वी पंजाब के जिला अम्बाले में जगाधरी नगर है। यह नगर उत्तर प्रदेश और पंजाब की सीमा पर है। इस नगर में विशाल जैन मंदिर, जैन पाठशाला आदि धार्मिक संस्थायें है। इस नगर में जैन गृहस्थियों की बहुलता है। इस नगर में बर्तनों के बड़े-बड़े कारखानों प्राय: जैन गृहस्थियों के है।

इसी जगाधरी नगर में हमारे वीर भगत सुमेरचन्द जी का जन्म हुआ था। आप बचपन से निर्भीक थे। आपत्तियों, परिषहों और उपसर्गो का मुकाबला करना आप का सहज स्वभाव था। अंग्रेज। राज्य में आपने अहिंसात्मक स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लिया। आप गांधी जी के अनुचर थे।

स्वतन्तता युद्धा में सफलता के पश्चात् आपने आत्मा की घातक पांचों इन्द्रियों व मन तथा चार कषायों पर विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध प्रारम्भ कर दिया। आपने गृह कार्यो से सम्बन्ध व्युच्छेद कर दिया। आपने गृह कार्यो से सम्बन्ध व्युच्छेद कर दिया और अल्प परिग्रह रख कर आप अध्यात्मक सत श्री गणेशप्रसाद वर्णी जी की संगति में रहने लगे। आपने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिये इन्द्रिय विषयो का बहुत कुछ त्याग कर दिया, अष्टम प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये और निरन्तर समयसार आदि ग्रन्थो की स्वाध्याय में रत रहने लगे। आपको जीव अजीव आदि सा तत्त्वो पर अटूट श्रद्धा थी स्व-पर का विवेक था। इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान व एक देश चारित्र से युक्त थे। उनकी ससार, शरीर और भोगों में रुचि घटती गयी और उदासीनता बढ़ती गई। आप अधिकतर शाति निकेतन उदासीन आश्रम ईसरी में रहकर धर्म साधना करते थे। आप स्वावलम्बी थे। ईसरी स्टेशन पर जाने के लिये जीने (पैडियों पर होकर जाना पड़ता है। वर्षा ऋतु थी आप का पैड़ी पर पग फिसल गया। आप गिर पड़े बहुत चोट आई आप को गिरडीह ले जाया गया दो-तीन ब्रह्मचारी आपके साथ गिरडीह गये। सेफ्टिक हो गया एक दिन, रात्रि को आप को भान हुआ कि आयु अत्यल्प रह गई है। आपने अपने साथियों को उठाया चारों प्रकार के आहार का सर्वदा के लिये त्याग

कर दिया, सर्व वस्त्र उतार कर नग्न मुद्रा धारण कर ली और ध्यानस्थ हो गये। इस प्रकार सल्लेखना सहित इस नश्वर शरीर का त्याग किया। ऐसे भगतजी को मैं श्रद्धाञ्जली अर्पित करता हुं और भावना करता हूं कि इस प्रकार सल्लेखनापूर्वक मेरा भी मरण होवे। आपने अपने जीव काल मे अनेकों व्यक्तियों को उपदेश देकर उनकी सल्लेखना कराई। आपके दो पुत्र श्री मुन्नालाल व सुमतप्रसाद हैं जो धर्मात्मा हैं।

शुभचितक :

पं० रतनचंद, सहारनपुर

श्रीयुत लाला मुन्नालाल जो नरेशचंद्र जी

दर्शन विशुद्धिः

आज मैंने जैनमित्र में ब्र० श्री भगत सुमेरचंद्र जी वर्णी का स्वर्गवास गिरीडी में हुआ पढ़ा, पढ़कर मोह-जन्य शोक हुआ। ऐसे महापुरुष सरलस्वभावी, निस्पृही सच्चे आदर्श विद्वान् त्यागी का वियोग किस सहृदय व्यक्ति को दुखकर न होगा ? किन्तु सिवाय संतो॰ के कोई इलाज ही नहीं। संसार की दशा क्षणभंगुर है यही दिन सबको आना है मोही प्राणी जितनी दूसरों की चिन्ता करता है उतनी निज की नहीं। ससार में कौन किसका, सभी प्राणी अपनी-अपनी आयु लेकर आते है। पूर्वोपार्जित सातोदय से सुख और पापोदय से दुख भोगते और आयु समाप्त होने पर अन्य पर्याय को प्रयाण कर जाते है आत्मा का स्वभाव निरुपद्रव, ज्ञाता, दृष्टा है। इसकी श्रद्धा ज्ञान और रमणता मोक्षका मार्ग है अन्य सब द्रव्य और भाव मुझसे भिन्न है। आप विद्वान हैं, संसार की असारता के ज्ञाता हैं, अनुभवो है। दोहा—'रे मन सोचे कौन को, करे सो कौन विचार। गये सो आवनहार नहीं रहे सो जावनहार ॥' जो गये सो आने वाले नहीं और जो हैं वह जाने वाले हैं। अब सोच किस बात का अतः संतोष धारण कर। पिताजी ने जिस प्रकार अपने मानव जनम को सफल बनाया आप लोग भी उसे लक्ष्य बनायें, यही शांति का मार्ग है। हम आपके शोक में संवेदना प्रगट करते है। स्वर्गस्थ आत्मा अनन्त शांति को प्राप्त हो ऐसी भावना करते हैं।

दि० २७-७-५७ आपका शुभचिन्तक :

ब्र० छोटेलाल, इन्दौर

श्रीमान् भाई मुन्नालाल जी नरेशचद्र जी जगाधरी

अचानक श्री श्रद्धेय भगत ब्र० सुमेरचद्र जी वर्णी के स्वर्गवास के समाचारों से संस्था के प्रत्येक व्यक्ति को अत्यन्त शोक हुआ— दिवगत आत्मा अवश्य ही विशेष सुख मे हैं परन्तु दुख है कि हम उनके सुखद संसर्ग से वचित हो गये। सिवाय धैर्य के संसार में और कुछ नहीं कर सकने। आशा है आप संतोष धारण कर ससार की अनित्यता का विचार करेंगे ओर पूज्य भगत सुमेरचंद जी के पदचिह्नों का अवलोकन करेंगे। वह सुखी है इसमें सन्देह नहीं। हम सब आपके साथ है।

स्याद्वाद महाविद्यालय
वाराणसी
१३-८-५७

वियोगसंतप्त :
पदमचद्र, सुपरिन्टेन्डेन्ट
तथा संस्था सम्बन्धी
समस्त परिवार

श्रीमान् लाला मुन्नालाल जी !

जयजिनेन्द्र !

कल जैन सन्देश से यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ कि आपके पिता जी का गिरीडीह में स्वर्गवास हो गया। भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का हमारा सम्बन्ध दीर्घकाल से रहा। मुख्तार श्री जुगल-किशोर जी की ओर से हम आपके इस इष्ट वियोगजन्य दुख में सवे-दना व्यक्त करते हुए श्री जिनेन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि दिवगत आत्मा को परलोक में सुख और शांति प्राप्त हो। उन्होंने अपना जीवन बहुत अच्छी तरह से व्यतीत किया है, हमारे योग्य सेवा लिखें।

भवदीय :

दि० २७-७-५७

परमानन्द शास्त्री
वीर सेवा मंदिर,
दरियागंज दिल्ली

श्रीमती शकुन्तला देवी धर्मप० ला० मुन्नालाल जी जगाधरी !

दर्शन विशुद्धि।

आगे हमको गिरीडीह से सूचना मिली है कि श्रीमान् भगत

सुमेरचन्द्र जी वर्णी का देहावसान हो गया है, जिसको मालूम करके हमको दुख हुआ। भगवान से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान हो और आप सब तो धर्मात्मा और ज्ञानी हैं, आपको क्या शिक्षा दें, केवल इतना ही कहना काफी होगा कि आप लोगों को धैर्य रखना चाहिए। बाकी शुभ :

दिनांक २७-७-५७

ब्र० कृष्णाबाई
दि० जैन मुमुक्षु महिलाश्रम
श्री महावीरजी (राज०)

धर्मबन्धु लाला मुन्नालाल जी !

सादर जयजिनेन्द्र !

इधर जैन पत्रों से यह ज्ञातकर बडा दुख हुआ कि आपके पूज्य पिता जी तथा समाज के महान त्यागीवर्य उदार महानुभाव लगनशील धार्मिक रत्न ब्र० सुमेरचन्द्र जी भगत वर्णी का ईशरी (गिरीडीह) में अकस्मात् समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास हो गया है। भगतजी हमारी समाज के खरे और सच्चे त्यागी थे। उन्होंने एक सम्पन्न एवं पूर्ण परिवार को छोड़कर आत्मसाधना के लिए त्याग मार्ग अपनाया, जिस पर वह वर्षों से अनवरत गतिशील थे। उनका अभाव आज सभी को खटक रहा है। भगवान श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि स्वर्गीय आत्मा को परम शांति का लाभ हो और कुटुम्बी जनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्राप्त हो। संस्था के प्रति उनका बहुत स्नेह था।

शोकार्त :

दिनांक ५-८-५७

रघुवीरसिंह जैन मंत्री
भा० अ० र० जैन सोसायटी
दरियागंज, दिल्ली

भाई मुन्नालाल जी जयजिनेन्द्र !

आज दिन आपके दो पत्र एक ईशरी और दूसरा जगाधरी का लिखा प्राप्त हुआ। पूज्य भगत जी के देहावसान के अचानक समाचारों को पढ़कर खेद हुआ। साथ ही हर्ष इस बात का हुआ

कि जिस श्रेय को प्राप्त करने का संकल्प उन्होंने किया था, उस परम पद की प्राप्ति वह कर गये। जिस वाह्य-आभ्यन्तर परमपद की प्राप्ति महान् दुर्लभ है उस परम दिगम्बर दशा को प्राप्त करके इस नश्वर शरीर को छोड़कर सद्गति को प्राप्त किया। उनकी उस दिगम्बर अवस्था को हम वंदना करते हैं। आपका दुख भी सुखरूप में बदल जाना चाहिए, यह शरीर नश्वर है और इससे अगर परमपद की प्राप्ति हो जावे तो और क्या चाहिए। यह जगाधरी का ही नही उत्तर भारत का परम सौभाग्य है कि जो भगत जी ने प्रारम्भ दशा में बनाया था, उसकी पूर्ती अंतिम श्वांस तक की। ऐसे नररतन भारत में विरले ही होते हैं जो समाधिसहित दिगम्बर व्रत को ग्रहण करके अपने नाम को अमर कर गये। धन्य है वह महान् आत्मा, हमारी शत-शत वंदन।

आपका कृपाकांक्षी :

दि० २३-७-५७ जिनेश्वरप्रसाद जैन

फर्म–उदयराम जिनेश्वरदास जैन,

सहारनपुर

विविध स्थानों से समागत

शोक प्रस्ताव :

श्रीमान् माननीय पूज्य वर्णी सुमेरचंद्र जी का असमय में मरण सुनकर सहारनपुर के जैन पंचायती मंदिर की शास्त्र सभा को दुःख हुआ, लेकिन संसार का नियम है कि संयोगी पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। पूज्य वर्णी जी तो जीवन भर चारित्र पालते रहे और अन्त में मुनि लिंग धारण किया इससे उन्होंने अपने जीवन को और ऊंचा किया, नर जनम को सार्थक बनाया। यह सभा उन दिवंगत आत्मा के निकट व सम्बन्धियों के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट करती है और पूज्य वर्णी जी के प्रति सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है—

विनीत :

दिनाङ्क २८-७-५७ जम्बूप्रसाद जैन

मंत्री दि० जैन समाज,

सहारनपुर

श्री मुन्नालाल जैन, जगाधरी
जन्म १४-४-१९१५

श्रीमती शकुन्तला देवी जैन (धर्मपत्नी श्री मुन्नालाल जैन, जगाधरी)
जन्म १६-४-१९१७ : स्वर्गवास १६-१-१९७४

Jiyaganj (Bengal) Date 25 July 1957
16/50 Recd: 8/10 A.M.

Mulraj Jotiprasad Jagadhri

Shoked at death news pujya Shree Sumerchand barri we Express Condolence. Jiaganj Samaj

मान्यवर सादर-जयजिनेन्द्र

आज ता० २१-७-५७ को दि० जैन मंदिर जगाधरी में हुई यह जैनसभा जगाधरी के आध्यात्मिक संत भगत सुमेरचंद्र जी वर्णी के ता० १९-७-५७ के सुबह ६ १० पर गिरीडीह में समाधिपूर्वक मरण हो जाने के समाचार तार द्वारा जानकर हार्दिक शोक प्रकट करती है तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति लाभ की प्रार्थना करती हुई उनके त्यक्त परिवार के प्रति सम्बेदना प्रकट करती है।

२१-७-५७ व्यथित हृदय: समस्त दि० जैन समाज,
जगाधरी

मान्यवर !

उक्त महानुभाव द्वारा यहाँ के और अनेक देशों के प्राणियों का जो हित हुआ वह अवर्णनीय है। ऐसे योगी के असमय में उठ जाने से दुःख का होना स्वाभाविक है पर आप वस्तुस्थिति के ज्ञाता है धैर्य के सिवाय और कोई चारा नहीं। आशा है आप लोग भी उनके पद-चिह्नों पर चल कर उन्हीं का अनुकरण कर समाज हितैषी बनेंगे।

भवदीय :
फूलचंद जैन बजाज
मन्त्री जैन समाज, जगाधरी

Nakur Dated 27 July, at 12-40 Recd 9 20

Munna Lal Sumatpershad Jagadhri. heartly Saradhanjli Bhagat Sumerchand Warni Narwan.

Jain Panchayat Nakur.

प्रिय भाई मुन्नालाल नरेशचन्द्र जी

सादर-जयजिनेन्द्र !

पत्र मिला पूज्य भगत जो का स्वर्गवास पढ़कर बहुत दुःख हुआ जोव के आयु कर्म पर किसो का बल नहीं है आप दोनों भाई विद्वान है धर्म मे लगन है इसलिए इस महान शोक को धैर्य के साथ-साथ पूरा करेग ऐसे महान आत्मा से यही शिक्षा लें कि उनके मार्ग पर चल कर अपना लाभ करें। यही हमारे प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा है उनकी आत्मा की शान्ति लाभ की हम कामना क्या करे। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से ससार के भव बन्धन को काट कर मुक्ति रानी की निकटता प्राप्त की है आप दोनों भाइयों से प्रेम अखण्ड रहे यही मेरी भावना है।

भवदीय

२४-७-५७ बेनीप्रसाद जैन, सहारनपुर

आदरणीय चाचा जी सादर बन्दे !

आपके हृदय विदारक पत्र से हृदय अत्यन्त द्रवित हुआ। राग-भाव तो बन्ध के कारण है। आयु कर्म पूरा होने पर यह नश्वर-शरीर त्यागमय है। पूज्य वर्णी जी का दिगम्बर वेष मे स्वर्गारोहण और समाधिमरण एक असाधारण घटना है। ऐसी महान आत्मा को मन वचन काय से नमस्कार करता हुआ, अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूं।

आपका.

२५-७-५७ प्रेमचन्द्र जैन-गोपालमण्डी,
देहरादून

श्रीमान् सज्जनोत्तम मुन्नालाल जी को सुमतप्रसाद बलवन्तप्रसाद सर्राफ की सादर जयजिनेन्द्र वंचना।

पूज्य माननीय वर्णी जी का असमय में वियोग सुनकर दुःख हुआ। उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बनाया। अन्तिम समय मुनि लिग धारण कर सद्गति प्राप्त की। समाधिमरण में दत्तचित्त होकर शरीर त्याग किया। हम भगवान से प्रार्थना करते है, उनके वियोग में उनके कुटुम्बी जनो को धैर्य होवे तथा मृत आत्मा को शान्ति लाभ होवे

हम है आपके

२६-७-५७ सुमतप्रसाद बलवन्तप्रसाद जैन सर्राफ,
सहारनपुर

प्रियवर लाला मुन्नालाल जी जोग सहारनपुर से शिवप्रसाद की

सस्नेह जयजिनेन्द्र !

आगे धर्म के प्रसाद से यहां सब कुशल है आपकी-सबकी कुशल भली चाहिये माननीय ब्रह्मचारी श्री सुमेरचंद जी के असमय में स्वर्ग सिधारने से शोक हुआ। परन्तु यह सुन करके अंत समय में उनको श्री मुनि महाराज वा क्षुल्लक जी वा अन्य साधर्मी जनों का अत्यन्त उत्तम समागम होकर मुनि अवस्था में समाधिमरण हुआ इससे प्रसन्नता भी हुई आज श्रद्धाञ्जलि के समय आने का विचार किया था परन्तु यहाँ बुखार का बहुत जोर है, रास्ता भी खराब हो रहा है आ नही सका मैं शुद्ध हृदय से लिखता हूं कि उनकी आत्मा को सद्गति प्राप्त हो आप सब मय बहू बच्चों के आनन्द से धर्म-ध्यानपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

२८-७-५७ शिवप्रसाद सर्राफ, सहारनपुर

मान्यवर भाई मुन्नालाल जी

सस्नेह-जयजिनेन्द्र !

कुछ दिनों हुए पत्रों मे पूज्य भगत जी का आकस्मिक स्वर्गवास पढ़कर अत्यन्त खेद हुआ। मुझ पर उनका धर्मवात्सल्य के कारण सहज स्नेह ही था। उन्होंने ही मेरी असह्य पुत्र वियोग की व्यथा के समय धैर्य बधाया और आपसे भी परिचय कराया। मै कहा तक उनका गुण-गान करूँ। ६ वर्ष पहिले जब वर्णी संघ ललितपुर था तो उनके साथ ही थूवौन चन्देरी आदि स्थानों की यात्रा सुख से की। वर्णी जी के पास जाने का कुछ विचार बन हो रहा था कि भगत जी के अभाव का स्मरण आते ही विचार छोड़ दिया। उनके अतिरिक्त और कौन मेरी वहां पर देखरेख और पूछ परतीत करता।

अच्छा, जो कर्म को मजूर है। उनकी भव्य और निर्मल आत्मा को अवश्य कल्याण की प्राप्ति है। हम तो केवल अपनी भावना पूजा-रूप श्रद्धाञ्जलि ही अर्पण करते हैं।

बच्चों को प्यार योग्य सेवा से सूचित करें।

२० सी वेयर्ड रोड, भवदीय :
नई दिल्ली १८-८-५७ सुखमालचंद्र
Superintendent Directorate of Technical
Development Ministry of Defence (CGDP)

श्रीयुत् मुन्नालाल जी, सादर जयवीर वंचना जी !

अत्र कुशलं तत्रास्तु ! अपरंच यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि पूज्य भगत सुमेरचन्द्र जी अब इस संसार में नहीं हैं। श्री स्वर्गीय आत्मा को सद्गति तथा कुटुम्बी जनों को धैर्य प्राप्त हो यही जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है।

पूज्य भगत जी के दर्शनों का एवं उपदेशामृतपान करने का पूर्ण सौभाग्य मुझे यहाँ कई बार प्राप्त हुआ। आप यहाँ श्री नेमिनाथ दि० जैन मन्दिर के उद्यान में स्थापित अ० भा० दि० जैन व्रती विद्यालय में रहते थे, आपने यहाँ चातुर्मास भी किया था। आपका उपदेश बड़ा ही हृदयग्राही और सरल भाषा में होता था। जब भी मैं आपके दर्शनों अथवा उपदेशामृत पान करने जाता था तो बड़े ही स्नेह से अपने पास बुलाकर बिठलाते थे। आपका लौकिक ज्ञान भी काफी बढ़ा-चढ़ा था। आध्यात्मिकता को प्रगति इसी बात से सिद्ध है कि आपने कई रचनायें की हैं। अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर क्रमश ब्रह्मचारी, क्षुल्लक तक होने की सोचते थे। आप कई भाषाओं के जानकार थे। आपके कारण भोपाल में बड़ा आनन्द रहा। जब ब्रह्मचर्याश्रम (व्रती विद्यालय) में त्यागीगण एक साथ सामायिक में बैठते थे तो श्री नेमिनाथ दि० जैनमन्दिर का प्रांगण तपोभूमि के सदृश आध्यात्मिक रस से भरपूर हो जाता था। वह सुन्दर दृश्य आज भी आँखों के सामने आ जाता है तो मैं आनन्दित हो उठता हूँ। प्रातः उषाकाल का दृश्य भी बड़ा सुहावना मालूम होता था। आप कहा करते थे—मैंने भारतवर्ष में बहुत से स्थान देखे तथा रहा भी, परन्तु ध्यानादि आध्यात्मिक प्रगति के लिए यह स्थान जितना शान्त और मनोरम है और कहीं नहीं। मैं कहता, पूज्यश्री यह भोपाल के लिए प्रकृति की अनुपम देन है। मध्य प्रदेश की राजधानी बनने का सौभाग्य भी भोपाल को इसी कारण प्राप्त हुआ है। मैं कभी-कभी वैसे ही भगत जी से पूछ बैठता आपको गृह-कुटुम्बियों की याद नहीं आती, वह मुस्करा देते और बड़े प्रेम से कहते, भाई संसार का कारण ही मोह है इस पर जितना कन्ट्रोल किया जावे उतना ही आत्मा प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। उनके यह शब्द आज भी मुझे प्रेरणा प्रदान करते हैं, धन्य हैं वह महान् आत्मा।

दि० २६-८-५७ विनीत :

गुलाबचन्द्र पांड्या, भोपाल (म० प्र०)

प्रियवर भाई मुन्नालाल जी,

जयजिनेन्द्र !

आपका पत्र आया समाचार पढ़कर दुःख हुआ। अभी तो उनकी इतनी अवस्था नहीं हुई थी। शांति इसी बात की थी कि वे सब चीजों का त्याग कर मुनि अवस्था को पहुंचे, जिससे उनकी आत्मा को कितनी उच्च स्थिति मिली होगी व अपने सबके लिए कैसा ऊँचा उदाहरण रक्खा कि घर को कैसी अच्छी स्थिति में छोड़ा और हमेशा आगे ही बढ़ते रहे। ईश से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शांति मिले, वे उच्च अवस्था को प्राप्त हों।

आपका :

दिनाक २५-७-५७

बाबू बलवन्तराय जैन
इंजीनियर एन्ड कन्ट्रैक्टर (बम्बई)

श्रीयुत मुन्नालाल जी तथा सौ० शकुन्तला देवी,

जयजिनेन्द्रदेव की !

पत्र आपका आया, पढ़कर अति शोक हुआ। श्री भगत जी की देवगति पढ़कर एकदम धक्का सा लगा, क्योंकि कोई बीमारी भी आगे नहीं सुनी। उन्होंने अपनी आत्मा को साध कर इस पूज्यपदवी पर पहुंचाया। और इतनी अच्छी समाधिमरण पूर्वक देवगति हुई, यह एक बहुत सौभाग्य की बात है। अब हम सबकी यही भावना से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शांति मिले, और मोक्ष गति हो। आप लोगों के तो शिर पर से अवश्य छत्रछाया उठ गयी। इसमें सन्देह नहीं, कितना भी दूर रहें पर फिर भी बच्चों के मन में तो छत्रछाया की सी ही भावना रहती है। आशा है आप लोग भी इस धक्के को शाति-पूर्वक सहन करेंगे। इसके आगे किसी का चारा नही है। घर में सबको हमारी ओर से सहानुभूति पूर्वक सात्वना देना। बाकी सब प्रकार कुशल है, सबको जयजिनेन्द्र बच्चों को आशीर्वाद ! पत्र देना।

२७-७-५७

आपकी शुभचिन्तिका बहिन,
लाजवन्ती—बम्बई

संवेदना पत्र

आरंभ परिग्रह तें विरत, विषय वासनातीत।
ज्ञानध्यान तप में मगन, नमहुं सुगुरु कर प्रीत ॥

उपस्थित महानुभाव ! जिस सन्त के निधन हो जाने से हमारे हृदयों में जो क्षोभ हुआ, उसका अनुभव तो हम सबो को जो-जो उनके सम्पर्क मे रहा होगा, अवश्य हो ही रहा है। वह लाला सुमेरचन्द्र जी जिस समय गृहस्थ थे, सभव है इसे २५ वर्ष मे भी ज्यादा हुए होंगे। उनके साथ मुझे श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जी की यात्रार्थ जाने का अवसर मिला था। उस वक्त हमेशा निकट सम्पर्क मे रहकर मैने देखा कि उनकी वृत्ति उन दिनो भी एक व्रती श्रावक से कम नही थी। शास्त्र अध्ययन का तो उनको बड़ा भारी व्यसन था, उससे वह कभी अघाने नही थे। वह जिनेन्द्र-पूजन सामायिक आदि करते तो बिलकुल एकाग्रता मे ही करते थे। हम लोगों का भी प्रिय वचनों द्वारा सत् कार्यो मे प्रवृत्त होने की प्रेरणा किया करते थे और जब से उन्होंने घरबार छोड़कर सातवीं-आठवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए थे, तब तो फिर सोने में सुगन्ध वाली बात हो गयी थी। इस अवस्था में रहते हुए जब-जब उनका यहाँ पदार्पण होता, मेरे पर विशेष अनुग्रह था। इसलिए हमेशा हितदेशना दिया करते और सन्मार्ग में लगने की प्रेरणा किया करते थे। उनकी प्रेरणा से ही पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी जैसे सन्तों का हमें यहाँ जगाधरी में समागम मिला और उनके उपदेशों के लाभ द्वारा हमारा बहुत कुछ हित हुआ। मुनिश्री १०८ नमिसागर जी के यहाँ पधारने पर आप फौरन आगे, हमें मुनिचर्या का मार्ग बताया और पात्र दान की विधि से वाकिफ कराया। उन्होंने अपने इस व्रती जीवन मे न मालूम किन-किन प्रान्तो मे भ्रमण किया और कितनी आत्माओं को कल्याण के मार्ग में लगाकर श्रेयोभाजन बने। त्यागी व्रतीजनों की व्यवस्था का जब मौका आया, पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी ने इन्हें ही सौंपा। सागर भोपाल ईशरी आदि के उदासीन आश्रमों के आप अधिष्ठाता और व्यवस्थापक भी रहे। आपकी मात्र ऐसी निरीह वृत्ति थी कि सभी आपका लोहा मानते थे। विहार प्रान्त में तो आपका जितना सम्मान था, आजकल के त्यागियों में शायद ही किसी का हो। मेरा ख्याल है

कि वह करीब ४५ वर्ष की अवस्था में ही घर-बार छोड़कर त्यागियों की कोटि में आये, तभी से अनेक प्रान्तों में भ्रमण किया। बहुत से भाइयों को धार्मिक प्रेरणाये दीं, पूज्य बड़े वर्णी के साथ रहने से कई हजार मील पैदल भ्रमण किया। इन वर्षों में उन्होंने आत्महित और परहित में अपने को लगाकर जो साधना की वह उन्हीं से बनती थी। उनका त्याग और व्रत भी अनोखा था। रस-परित्याग हमेशा करते ही रहते थे, दो-चार रसों का छहों रसों में से त्याग चलता ही रहता था। सहिष्णु बड़े थे, रोगादि आने पर हरगिज घबड़ाते नही थे। दो-चार बार इस व्रती जीवन में उन्हें व्याधियों ने भी घेरा, पर वह विचलित नहीं हुए। ऐसे कर्मठ सन्त के उठ जाने से जो क्षति हुई उसकी पूर्ति होना तो कठिन है, इस बात का हमे दुख है पर संतोष इस बात का है कि उन्होंने अंत समय समाधि लेकर अपनी युगो की साधना सफल की और अपने मनुष्य जन्म के ध्येय को सफल किया। अधिक क्या कहूं वह आध्यात्मिक संत वास्तव में संत ही थे। मै उनके चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और यह भावना करता हूँ कि भगवान अंत समय हमें भी ऐसा अवसर प्राप्त हो। साथ में यह भी प्रार्थना करता हूँ कि जिन्हें ऐसे पुण्य पुरुष की संतान होने का गौरव प्राप्त है, उन्हे चाहिए कि वह इनके पदचिह्नों पर चलकर अपने जीवन को पवित्र बनावें। भगवान से विनती है दिवंगत आत्मा को शान्ति दे। शोक संतप्त आत्माओं को सहिष्णु बनावें। "ॐ शान्ति"

विनीत :

दिनाङ्क २८-७-५७ जम्बूप्रसाद राजकुमार जैन,
जगाधरी

तीन भुवन मैं सार, बीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुं त्रियोग सम्हारिके ॥

उपस्थित महानुभावो, माताओ तथा बहिनो! आज हम सब जिस सन्त के पुनीत चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने को एकत्रित हुए हैं उनके विषय में यद्यपि पूर्व वक्ताओं ने बहुत कुछ प्रकाश डाला है। मैं चूंकि अपने पूज्य पिता स्व० जुगमन्दरदास जी से उनका विशेष धर्मानुराग होने की वजह, उनके सम्पर्क में बहुत रहा। मेरा

जहाँ तक खयाल है भगत सुमेरचंद्र जी गृहस्थी में भी एक आदर्श गृहस्थ की भाँति रहते थे। अपने नित्य नैमित्तिक कर्म कर चुकने के बाद ही दुकान जाते थे। परन्तु जब वह गृहविरत उदासीन त्यागी की कोटि में पहुंचे, तब तो उनका ज्ञान-वैराग्य बहुत बढ़ गया था। उनकी सौम्य आकृति ही ऐसी शांत और मोहक थी कि जो भी उनके सामने आ जाता था, प्रभावित हुए विना नहीं रहता। और उनसे उसे ऐसी प्रेरणा मिलती जिससे वह हित-मित मार्ग मे लगता। वह इतने दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि वह अपने नियमों से तनिक भी विचलित नही होते थे। वे हमारे इस पंजाब प्रान्त में जैन समाज के एक अकेले ही ऐसे त्यागी हुए जिन्होंने वर्तमान युग में अपने व्यक्तित्व से हमारे प्रान्त में धार्मिक जागृति पैदा कराई। और हमारे इस जगाधरी नगर को प्रख्यात किया। उन्होने आत्म कल्याण के साथ-साथ सारे उत्तर प्रान्त के गौरव को बढ़ाकर चार चाँद लगाये हैं। उन्होने दूसरे प्रान्ता भी पूज्य श्री १०५ पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज के साथ पैदल यात्रा द्वारा धर्म का प्रचार किया। जिससे सारो जैन समाज भली-भांति परिचित है। त्याग भी उनका बढ़ा-चढ़ा था, ध्यान अध्ययन की तो उन्हें टेव पड़ गई थी। हमारे स्व० पूज्य पिता जी और भगत जी समवयस्क ही होंगे। पर भगत जी फिर भी पूज्य पिता जी को ही बड़ा मानते थे, ऐसा उनमें वात्सल्य था। भगत जी हर समय उन्हे ऊँचा चढ़ने की प्रेरणा किया करते थे। आप ही उन्हें घरेलू झझटों और उद्योग-धन्धों से निवृत्ति कराने मे सहायक रहे। आपने अपने जीवन के इन (१३) तेरह वर्षों में गृह विरत रहकर धर्मध्यान के साथ अनेक भव्यों को भी अपने सदुपदेशों द्वारा सन्मार्ग पर लगाया। जब कभी आप यहाँ पर पधार जाते हम लोगों में एक नई चेतना आ जाती और हमें भी अपने हित के लिए कोई न कोई धार्मिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती। पिछले वर्षों में स्थानीय जैन युवक मंडल में जो उत्साह की लहर आई थी, वह उक्त भगत जी की ही देन थी, जिसके लिए मंडल भी आभारी है। मैं अपनी तरफ से और अपने जैन युवक मंडल जगाधरी की तरफ से वंदनीय भगत जी सुमेरचद जी वर्णी के पुनीत चरण कमलों मे अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि नत मस्तक हो बार-बार अर्पण करता हूँ। दिवंगत आत्मा को शान्ति लाभ चाहता हूँ तथा हमारी हार्दिक भावना यह है कि जिनकी गौरवगाथा आज हम

जा रहे हैं, हमें भी भगवान् उनके पदचिह्नों पर चलने का साहस प्रदान करें। अलमति विस्तरेण।

विनीत :

२८-७-५७ पुरुषोत्तमदास, जगाधरी

श्री १०५ परमादरणीय जैन धर्मानुयायी परमभक्त श्री सुमेरचंद्र जी की मृत्यु पर पंसारी समाज जगाधरी की ओर से सम्वेदना पत्र तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाती है।

श्री १०५ भगत सुमेरचंद्र जी निजधर्मपरायण करुणा वरुणालय अपने स्मरणीय अर्हंत देव को स्मरण करते हुए श्रावण कृष्ण ७ शुक्रवार वि० सं० २०१४ तदनुसार ता० १६-७-५७ के दिन इस असार संसार को छोड़कर परमधाम (निर्वाण पद) को चले गये।

श्री १०५ भगत जी 'अहिंसासत्यवचनं सर्व भूतानुकम्पनं। शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ॥' इन धर्मों का पूर्णरूप से पालन करते हुए भी और ऐश्वर्यादि से सम्पन्न होते हुए भी जैसे लिखा है (आनन्द पूर्ण घर सुपुत्र सुशीला धर्मपत्नी अपने मित्र और धन ब्रह्मचारी आज्ञाकारी नौकर और सत्संगति का होना उत्तम घर कहा गया है) यह सब उनके घर में होने पर भी इस संसार को असार जानकर संवत १९९७ में गृह त्याग करके १६-१७ वर्ष नाना प्रकार के शारीरिक श्रम सहन कर यथा प्राप्त भोजनादि से निर्वाह करते हुए अनेक देश देशान्तरों में और उनके पूज्य तीर्थ स्थानो में भ्रमण करके लोगों को सदुपदेश देकर जीवादि रक्षा में संलग्न रहकर अन्य प्राणियों को भी उसी में लगाया।

पूज्य भगत जी के गार्हस्थ जीवन में उनके साथ हमारा वाणिज्य व्यवहार और नगरवास चिरकाल तक रहा। वे हमारी जगाधरी की पंसारियान् एशोशियेशन की वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर तो थे ही, इसके मंत्री भी बहुत काल तक रहे और जब निर्वृति पथ के पथिक बनने का विचार कर लिया तो सं० १९९० में उन्होंने मंत्री पद त्यागा। वह सज्जन, परोपकारी, दयालु, सबके साथ सद्व्यवहार करने वाले पुरुष थे। हम इनके गुणों की प्रशंसा करने में असमर्थ हैं। हम उनके सद्गुणों से प्रभावित हैं, ऐसे सज्जन संसार में विरले ही

मिलते हैं। इनके गुणों का स्मरण करके हमारा हृदय गद्गद हो जाता है। वाणी वर्णन करने में असमर्थ है। इसलिए हमारी मति मे यह आता है कि वे माता-पिता धन्य है, जिनके घर में ऐसे पुत्र रत्न ने जन्म लिया है। वह देश भी धन्य है, जिस देश मे इन्होने परोपकार और धर्मोपदेश किया है। वह परिवार भी धन्य है, जिस घर को ऐसे धर्मात्मा ने भूषित किया है।

श्री १०५ भगत जी के अभाव से हमें जो क्षति हुई है वह पूर्ण होना असम्भव है। हम सब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि भगवान् श्री भगत जी की आत्मा को उत्तमोत्तम गति देकर उनके शोकाकुल पुत्र पौत्रादि को शोक सहन करने की शक्ति प्रदान करे। और हम यह श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

विनीत :

दि० २८-७-५७ मन्त्री

पंसारी समाज, जगाधरी

श्री माननीय भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का असमय में स्वर्गवास सुनकर यमुना नगर जैन समाज को महान् दुःख हुआ। यमुना नगर जैन समाज का तो बच्चा-बच्चा इन स्वर्गीय महान् आत्मा को सदैव ही सुमरन करता रहेगा। श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी यमुनानगर की स्थापना का पूर्ण योगदान उन्हीं का है। श्री भगत जी के ही प्रभाव व प्रयत्न से ही श्री पन्नालाल जी, श्री सुन्दरलाल जी व उनकी माता जी से लाखों रुपये की जमीन श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी के लिए रजिस्ट्री कराकर महान् कार्य किया। जिससे भव्य आत्माओं को सदैव ही श्री वीतराग भगवान जी के दर्शनो का धर्म साधन का अवसर मिलता रहेगा। पूज्य भगत जी की सदैव कृपा दृष्टि व शुभाशीर्वाद रहा। ऐसे महान् संत के निधन हो जाने पर समाज के बच्चे-बच्चे को महान् दुःख है। वास्तव में हमारा तो सहारा ही हमसे छीन लिया गया, हम उनके गुण वर्णन करने में असमर्थ है। हमें जहाँ महान् दुःख है, किन्तु यह ज्ञात कर सन्तोष व हर्ष भी हो रहा है कि पूज्य भगतजी ने निर्ग्रन्थ पद से समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर को सचेत अवस्था मे पंच परमेष्ठी का सुमिरन करते हुए शान्तिपूर्वक त्याग किया और

अपनी जीवन साधना में सफल हुए। हम तो पूजा रूप अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए शुभ कामना करते है कि दिवंगत आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले और हम उनके पदचिह्नों पर चलते हुए अपना कल्याण करें। औम शान्तिः शान्ति !

वियोग संतप्त :
समस्त दिगम्बर जैन समाज यमुनानगर
प्रधान—मेहरचन्द्र जैन (ठेकेदार)

श्रद्धाञ्जलि

आज हम एक ऐसी आत्मा को श्रद्धाञ्जलि भेंट करने के लिए जमा हुए है जो इसान के रूप में देवता थे। आपके दिल में ससारी जीवों का प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। आप ६२ साल की उम्र में ही इस महान् दु खमयी संसार में हमें छोड़कर हमेशा के लिए जुदा हो गये। किन्तु आपकी नेक राहें अन्य जीवों को उत्तम पथ प्रदर्शन कराती रहेंगी। आप सिर्फ धर्म-कर्म में ही उत्तम स्थान पर नहीं, बल्कि पब्लिक जीवन में भी आपने समस्त शहर जगाधरी के निवासियों के दिलों में घर किया हुआ था। अपनी नेक खूबियां और उत्तम चरित्र की बजह से हर छोटा-बड़ा आपका गुणग्राही था। सन् १९३० में जब काग्रेस का आन्दोलन जोरों पर था, उस वक्त आपके दिल में देश भक्ति की लहर उमड़ी। आपने इस आन्दोलन में हिस्सा लेकर जेल यात्रा की, आपके दिल में देश की आजादी की तड़फ थी, आप देश को आजाद कराना अपना कर्त्तव्य समझते थे। आप लोकल संस्थाओं में भी अग्रसर थे, आप कन्या पाठशाला के प्रबन्धक थे और गऊशाला के भी मैनेजर थे। आइन्दा आने वाली नस्लें आपको हमेशा स्मरण करती रहेंगी। आपकी तबियत में ईश्वर भक्ति और वैराग की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, इसीलिए सन १९४२ में गृहस्थ जीवन को त्याग कर निजानन्द और परमात्मा में लवलीन होने की ठानी और आप घर छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गये। सन १९४६ में आपके बड़े भाई लाला ज्योतिप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। इस मौके पर फिर जगाधरी निवासियों ने आपकी संगति से

अपना कल्याण किया। फिर सन १९४९ में सागर से जगाधरी तक सात सौ मील की पैदल यात्रा करके, आप श्री १०५ क्षुल्लक गुरू गणेशप्रसाद जी वर्णी व क्षुल्लक श्री मनोहरलाल जी वर्णी, क्षुल्लक श्री पूर्णसागर जी वर्णी, क्षुल्लक श्री चिदानन्द जी महाराज व आठ-दस त्यागी व विद्वानों के साथ जगाधरी आये और हमारे शहर वालों को उनकी अमृत वाणी का पान कराया, फिर आप १९५५ में जगाधरी तशरीफ लाये। इस वक्त आपकी सेहत जिगर की खराबी की वजह से बहुत गिरी हुई थी। मेरे साथ उनको दिली प्रेम था। मैने कहा–भगत जी आपका इस बार शरीर बहुत दुर्बल हो गया, तो आप हँस कर कहने लगे–पंडित जी आप जानते ही है कि ये शरीर तो नाशवान है, ये बनता बिगड़ता रहता है। आत्मा तो हमेशा अमर है। कितना ऊँचा आदर्श था, उन्होने चन्द वाक्यों में ही मेरे मन को शांत कर दिया। हजारों खुशियाँ थी, स्वर्गधाम जाने वाले आदरणीय भगत जी की तमाम खूबियों को कहा जाये तो एक किताब बन जाये। आज इतने आदमी इकट्ठे हुए तो क्यों हुए मौत तो हजारों को हर रोज अपने आंचल मे ले लेती है कोई इतना बड़ा सम्मान नहीं दिया जाता उनकी महान खूबियो को जानते हुए हर प्राणी को श्रद्धाञ्जलि भेंट करने की इच्छा पैदा हुई और श्री जैन मन्दिर जी पहुंचकर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाये। आपने श्री शिखर जी गिरीडीह में १९ जौलाई सन १९५९ को सुबह ७ बज कर १० मिनट पर इस नाशवान शरीर को त्याग दिया और अपने पीछे हजारों प्राणियों को रो।ा-बिलखता छोड़कर परमधाम को सिधार गये। हर इसान की जबान पर बाकी रह गया।

कहाँ हो भगत जी कहलाने वाले भव्य जीवों को सदा उपदेश सुनाने वाले। आखिर में मैं भगवान सर्व शक्तिमान से प्रार्थना करता हुआ श्री पूज्य भगत जी के चरणों में श्रद्धाञ्जलि भेंट करता हुआ नतमस्तक प्रणाम करता हूँ और मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शांति मिले।

भेंटकर्ता :
पं० खुशदिलप्रसाद शर्मा हकीम
जगाधरी

—असामयिक वज्रपात—

श्रीमान वीतरागपूर्ण भगत सुमेरचंद्र जी वर्णी की असामयिक मृत्यु पर जो कि मिती श्रावण कृष्ण ७ भृगुवार सं० २०१४ तारीख १९-७-५७ के अरुणोदय में हुई व जिन्होंने इस संसार को वास्तव में असार समझकर अपनी साधना के बल पर अंत समय अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। इनकी आयु लगभग ६५ की होगी। यह बाल अवस्था से ही बड़े धार्मिक विचारक, शास्त्रों के अध्ययन मनन प्रेमी, इष्टमित्रों से प्रेमभाव, सब पर दया करने वाले, परोपकारी, सत्संगी थे। गृहस्थ अवस्था में भी इनका व्यवहार वड़ा पवित्र रहा। इनके युगल पुत्र श्रीमान् लाला मुन्नालाल जो सुमतिप्रसाद जी भी अपने पिता के आज्ञाकारी रहे और उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। मध्यमवय में ही भगत जी ने गृहस्थी का सारा भार इन्हें सौंपा और आप गृहविरत होकर सन्त समागम में तीर्थस्थानों में विचरने लगे। आप आत्मदर्शन की लालसा से सिद्धान्तपारगामी परमयोगी वर्णी पं० गणशप्रसाद जी न्यायाचार्य महाराज के शिष्य बने व अनेक साधनायें को व धर्मप्रचार कार्य में जीवन बिताकर अन्त में संन्यास ग्रहण कर दिव्यधाम को पधारे। आपके दिवंगत होने का समाचार सुनकर कुटुम्बीजन व इष्टजनों मे दु ख का पारावार उमड़ उठा है। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा अमरगति को प्राप्त होवे व संतप्तजन समुदाय को दुःख सहन करने का बल दें।

विनम्र :

२८-७-५७

ज्योतिषरत्न पं० पृथ्वीनाथ शर्मा

जगाधरी

श्री १०५ भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का श्रावण कृष्ण ७ सं० २०१४ शुक्रवार ता० १९-७-५७ के दिन मृत्यु पर समवेदना व श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

यं शैवः समुपासते शिव इति, ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः॥
अर्हन्नित्यथजैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथोहरिः॥

श्री १०५ भगत जी की मृत्यु पर समवेदना व श्रद्धाञ्जलि प्रगट करता हुआ उनके गुणों का स्मरण भी अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मैं अप्रैल सन् १९२८ में तबदील होकर यहाँ आया था, तब से भगत जी के साथ घनिष्ठ सद्व्यवहार रहा। वह सज्जन परोपकारी स्वधर्म परायण और सत्यवादी थे। जब मैं दुबारा जगाधरी आया तब उक्त सन्त जी यहाँ से विहार कर गये थे। परन्तु कभी-कभी यात्रा करते हुए यहाँ आते थे तो उनके दर्शनों का लाभ होता रहता था। मैं उनके गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर मेरे हृदय पर गहरा शोक छा गया। उनको स्मरण कर विह्वल हो गया। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ व अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ। आपको ईश्वर शुभगति देकर संतप्त परिवार को शोक सहन करने की शक्ति दें।

विनीत

२८-७-५७ गिरिधरदत्त शास्त्री

रिटायर्ड प्राध्यापक गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, जगाधरी

आदरणीय लाला पन्नालाल जी नरेशचन्द्र जी,

जयजिनेन्द्र !

अपरंच पूज्य भगत जी के स्वर्गारोहण के समाचार ज्ञात कर अत्यन्त वेदना हुई। पूज्य भगत जी यथार्थत. सम्यक्त्वादि गुणोपेत धर्मनिष्ठ सत्यवादी राष्ट्र समाजसेवी थे।

पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी के तो अनन्य भक्त थे।

मैं उनके धर्म वात्सल्य से बड़ा प्रभावित था, मेरे जीवन मे प्रेरणास्रोत मार्गदर्शक के रूप में उनका सदैव उच्च स्थान रहेगा।

श्रद्धानवत :

२९-७-५७ गुलाबचंद जैन न्यायतीर्थ शास्त्री

डीमापुर (नागालैण्ड)

—पूज्य पिता के चरणों में पुत्रों की विनम्र श्रद्धांजलि—

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

उपस्थित धर्मनिष्ठ सज्जनवृन्द अतिथिगण, माताओ, बहिनो आज यहाँ जिस प्रसंग में हम सब एकत्रित हुए हैं वह तो हमें विदित ही है।

संसार में अपने इष्ट का वियोग हो जाने पर ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे दुःख का अनुभव न होता हो। हमारे प्रातः स्मरणीय पूज्य पिता जी श्री सुमेरचंद्र जी वर्णी का विगत १९।७।५७ को मु० गिरीडीह (हजारीबाग) में प्रातःकाल ६', १०'' पर समाधिपूर्वक मुनि अवस्था में अनेक विद्वान और त्यागियों के सानिध्य में स्वर्गवास हो गया। पहिले से तो हमें ऐसी खतरनाक अवस्था की स्वप्न में भी खोज-खबर न थी इसके ५।७ दिन पहिले स्वयं उन्हीं के हाथ का लिखा पत्र हमें मिला था जिसमें उन्होंने जियागंज से वापिस ईसरी आते वक्त ईसरी स्टेशन के पुल पर से उतरते हुए पैर फिसल जाने से मामूली चोट शिर तथा एक टांग में आ गई है ऐसा लिखा था और साथ-साथ यह भी लिखा था चिन्ता की कोई बात नहीं यह जल्दी ही ठीक हो जावेगी। चौमासा के लिये जियागंज की धार्मिक समाज का अत्यन्त आग्रह होने से वहाँ ही चौमासा करने का वचन दे आया हूं और आज-कल में वहाँ से लेने के लिये पं० बंशीधर जी न्यायतीर्थ आ रहे हैं अतः मैं श्रावण-वदी २ तक जियागंज पहुंच जाऊंगा। अकस्मात् ता० १७-७-५७ की डाक में ब्र० मंगलसेन जी का गिरीडीह से लिखा पत्र मिला, जिसमें यह समाचार मिले कि वर्णी जी को उपचारार्थ ईसरी से गिरीडीह ले आये है। उसी दिन ४ बजे शाम को उन्हीं का दिया तार मिला— वर्णी जी बीमार हैं आओ! तब हमें विशेष चिन्ता हुयी और ऐसा प्रतीत हुआ कि बीमारी बढ़ गयी है और स्वास्थ्य-लाभ होने में समय लगेगा—अतः हम दोनों भाई उसी दिन रात के ३ बजे पंजाब मेल से गिरीडीह के लिये रवाना हो गये और ता० १९-७-५७ की सुबह लगभग ९½ बजे गिरीडीह पहुँचे तो वहाँ ला० जगतप्रसाद डालमिया-

नगर वालों की धर्मपत्नी जो उक्त वर्णी जी की परिचर्या को ही वहाँ आई हुयी थी यह हृदय विदारक सूचना मिली कि वर्णी जी का देहावसान तो सुबह ६'.१०" पर ही हो गया उनकी अन्त्येष्टी क्रिया सेठ रामचन्द्र जी सेठी के बगीचे में होने वाली है—यह सुनते ही हमारे जो असह्य दुःख हुआ कहा नहीं जा सकता। हताश हो हम दोनों भाई रोते-पीटते वहाँ पहुंचे जाकर देखा उनका विमान, उनके अंत समय की मुनि-अवस्था का जो गिरीडीह जैन समाज द्वारा वड़ी श्रद्धा और भक्ति से श्मशान यात्रा में निकाला गया था वहाँ रक्खा था, दाह के लिये आयोजित चन्दन, घी. कपूर नारियल गोला वगैरह प्रचुर सामिग्री पड़ी थी—धर्मालङ्कार पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ पं० बंशीधर जी न्यायतीर्थ पं० शिखरचंद्र जी शास्त्री प० सुखानंद जी वा ईशरी आश्रम के सभी त्यागीगण गण्यमानश्रावक, धर्मालंकार जी द्वारा आर्षपद्धति से कराये जाने वाले दाह संस्कार की आयोजना में लगे हुए थे। हमने वहाँ जाकर पूज्य पिता जी के शव को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और यह विचारा कि यदि कुछ देर और यहाँ पहुँचने में होती तो इससे भी वञ्चित रहना पड़ता। हमारा यह सौभाग्य है जो हमें इनकी अन्तिम संस्कार की वेला हाथ लग गई। गिरीडीह समाज ने उनके अन्तिम क्षण की मुनि अवस्था में पद्मासन मुद्रा में बैठा मृत देह को बड़े आदर और भक्ति से विमान में विराजमान कर बड़े भारी जनसमुदाय में प्रभावक ढंग से निकाली थी जिसे वहाँ के मुख्य बाजारों से ले जाया गया था यह उनके धर्म वत्सलता और व्रतियों मे विशेष आदरभाव का एक प्रतीक था। विधिवत दाह क्रिया हो चुकने पर पूज्य पिताजी के वियोग से व्यथित हम लोगों को रोते-पीटते देख प० पन्नालाल जी धर्मालंकार, सेठ रामचन्द्र जी सेठी, आश्रम के त्यागियो ने हमें सांत्वना दी और वस्तुस्थिति को समझाया। इसके बाद उसी दिन शाम को हम ईशरी चले गये वहाँ पूज्य वर्णी सरीखे उद्भट विद्वान त्यागी १०५ क्षुल्लक पूज्य गणेश प्रसाद जी जैसे वयोवृद्ध अध्यात्म योगी संत को भी उनके वियोग में खिन्न देखा उन्होंने कहा भैया हमने अपना एक चिर साथी खो दिया जिसका दुःख है, पर संतोष इस लिए है कि हमारे उस मित्र ने अन्तिम परीक्षा में सौ में से सौ नम्बरों से उत्तीर्णता प्राप्त की। पूज्य वर्णी जी ने अपने उद्गारों को प्रगट करते हुए यह भी कहा कि भैया वह तो हमारे प्राणाधार थे। हमारा एक कर्मठ वैयावृत्ति

करने वाला त्यागी पुरुष चला गया। गया जी वाली ब्रह्मचारिणी विदुषी माता पतासीबाई तो उन्हें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुई ऐसी गद्‌गद् हुई कि उनका कंठ रुक गया। पूज्य बड़े वर्णी जी कहन लगे, भैया हमारे साथी भगत जी ने मनुष्योचित कर्तव्यों में इस युग में जो आत्मसुधार का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है, उसे अपनाया और फिर उसी में दृढ़ रहकर ध्यान पूर्वक इस नश्वर शरीर को छोड़ा। मैंने सुना है बीसपथी कोठी के मैनेजर कोछल जी वकील ने गिरीडीह जाकर उन्हें मेरी दुहाई देते हुए इंजेक्शन लेने को प्रेरणा की, पर वे इस पर भी नही डिगे और अपने आत्मबल पर निर्भर रहकर यही जवाब दिया, मेरी चिन्ता मुझे है, किसी के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नही। इस नश्वर शरीर को यदि रहना है तो इस उपचार के बिना ही टिका रहेगा और जाना है तो मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।' धन्य है उनके परिणामों की स्थिरता। उन्हें सावधानी भी अन्तिम क्षण तक पूरी रही और पंच परमगुरू के स्मरण करते-करते प्राण पखेरू निकले, हमें इस पर गौरव है। हमारी तो यही भावना है कि भगवन् हमारा समाधिमरण भी ऐसा ही हो। पास में बैठे पन्ना-लाल जी, वंशीधर जी वगैरह ने भी यह कहा, भैया हमारा भी समाधिमरण ऐसा ही कराना। पूज्य वर्णी जी से हमें वास्तविक सान्त्वना मिली। वस्तुस्थिति समझ में आ जाने पर मनुष्य के हृदय से गलत धारणा निकल ही जाती है।

पूज्य पिता जी को विरक्त परिणति जब हम छोटे-छोटे थे तभी से थी, परन्तु सं० १९९० में जब उन्हें दिल्ली वाले बाबा किशनलाल जी का समागम हुआ, तब से उन्होंने नियमित रूप से पाक्षिक श्रावक के व्रत, ८ मूलगुणों का पालन सप्त व्यसनों का निरतिचार त्याग, स्थूल रीति से पंचाणुव्रत पालन आदि यम नियम ले लिए थे। अक्सर वह कहा करते थे कि भोग और उपभोग कम कर देने से जिसकी धन की तृष्णा कम हो गयी है, ऐसा व्यक्ति आजीविका के लिए वह काम हर-गिज नही करता, जिससे दूसरे को कष्ट पहुंचे। उसका खान-पान भी बहुत सात्विक और शुद्ध होता है। मैंने बड़े-बड़े हकीम और डाक्टरों से सुना है कि यदि किसी को साधारण खाँसी भी हो जाती है तो सबसे पहिले वे वैद्य डाक्टर उसे मादक पदार्थ मांस जमीकंद न खाने का परहेज कराते हैं। प्रसंगवश ऐसे वैद्य डाक्टरों से मैंने कहा, हमारे जैन

धर्म में तो यावज्जीव मनुष्य को त्याग ही बतलाया है तो वह यह जानकर बड़े प्रभावित होते थे।

यद्यपि इसके पूर्व भी उन्होंने चार बार श्री सम्मेदशिखर जी, एक बार जैनबद्री मूलबद्री, दो बार गिरनारादि क्षेत्रों की वंदना कर ली थी पर उन्हें इसमें भी संतोष नहीं हुवा वे तीर्थ यात्रा को फिर भी इस ध्येय से निकल पड़े कि अपने आत्मसुधार के लिये किसी गुण को तलाश की जाय जिसके पाद्मूल में रहकर शेष जीवन बिता कर अन्य हित मे लगाया जा सके। यह बात आज से १५-१६ वर्ष पहिले की होगी भाग्य से ईशरी में ही उन्हें पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी का समागम मिल गया तब उन्होंने उन्हीं के साथ रहकर अपनी आत्मसाधना करने का दृढ़ सकल्प कर लिया। वह वहा से जगाधरी आये दुकान और घर सम्बन्धी झंझटों को सुल्टाय। सारा कार्यभार हम लोगो पर छोड़ फिर पूज्य वर्णी जा से ही क्रम-क्रम से प्रतिमा रूप व्रत लेते गये और आठवी प्रतिमा तक का पालन करने लगे, वह अधिकतर तो उन्ही के साथ रहते उन्ही की प्रेरणा से वर्णी जी वगैरह जैसे सत भी यहाँ पधारे मुनिविहार भी इस प्रात मे हुआ। हमे भी जागृति मिली यहाँ या अन्यत्र जहाँ भी हगे फिर उनका समागम हुआ कौटुम्बिक चर्चा उन्होने कभी नही छेड़ी धार्मिक उपदेशों द्वारा ही हमें सम्बोधा—कोई सांसारिक प्रपंच उनकी जबान पर नही आया। यदि कारण वश हम भाइयों मे कोई मतभेद हुवा तो उन्होने प्रत्यक्ष वा परोक्ष मे इस तरह मिटाया कि हमे फिर खोजने का अवसर ही नही रहा हमारे परिणाम भी सरल हो गये। हम आज उनके जीवन की ऐसी अनेक बातों को विचार कर यही सोचते हैं कि यदि वह कुछ समय और टिके होते तो न जाने हमारा कितना हित होता पर यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्नतदन्यथा' यानी जो होनी होती है वह होकर ही रहती है उसे कोई अन्यथा कर नहीं सकता। यही सोच सिवाय सब्र के और कोई चारा यहाँ नही दिखता—

हमारे इस इष्टवियोगज दुःख में जिन-जिन त्यागीजनों, विद्वानों और श्रीमानों ने बाहर से सम्वेदना सूचक तार, पत्र भेजे हैं और जो हमारे निकट सम्बन्धी इस मौके पर हमें सांत्वना देने यहाँ पधारे हैं तथा यहाँ की जैन समाज के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने हमें ढांढस

बंधाकर हमारे दुख को हल्का किया हम पूज्य गुरू श्री पं० गणेश-प्रसाद जी वर्णी का महान उपकार तो भूल ही नहीं सकते जिनके प्रसाद से पूज्य पिता जी अपने ध्येय में सफल हुए। हम पूज्य ब्रह्मचारीगण और पं० पन्नालाल जी वगैरह विद्वानों का भी आभार मानते हैं, जिन्होंने उनके अंत समय उनकी वैय्यावृत्ति की, मारणान्तकी सल्लेखना में उन्हें समयसारादि के पाठ सुना सुनाकर सावधान किया।

अन्त में हम उनके पुनीत चरण कमलों में अपनो श्रद्धा के फूल चढ़ाते हुए बार-बार नत मस्तक होते हैं और कामना करते हैं कि हमें भी वह कूवत मिले जिससे हम भी उनके पद चिह्नों पर चलकर अपना सुधार कर सकें।

विनम्र सेवक :

दिनाङ्क २८-७-५७

मुन्नालाल सुमतिप्रसाद
जगाधरी

वर्णी पत्रावली

[श्री भगत ब्र० सुमेरचंद्र जी वर्णी, पूज्यवर क्षुल्लक श्री १०५ गणेशप्रसाद जी वर्णी के सत्समागम में रहे हैं। भगत जी जहाँ वर्णी जी के प्रीतिपात्र थे, वहाँ उनके प्रति विनम्र श्रद्धालु भी थे। भगत जी का अन्तिम जीवन तो वर्णी जी के साथ ईशरी अथवा उसके आस-पास ही व्यतीत हुआ था। पूज्य वर्णी जी ने यथा समय भगत जी को अनेक पत्र लिखे। वर्णी जी के पत्र साधारण पत्र नही। किन्तु धर्मशास्त्र के एक अङ्गरूप होते थे। उन सब पत्रो को सुरक्षित नही रखा जा सका, इसका खेद है। हाँ, कुछ पत्र ब्र० छोटेलाल जी के तत्त्वावधान में स्व० सरसेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर के द्वारा प्रकाशित 'आध्यात्मिक पत्रावलि' द्वितीय भाग में तथा वर्णी स्नातक परिषद् सागर के द्वारा प्रकाशित 'वर्णी अध्यात्म पत्रावली'-प्रथम भाग में प्रकाशित हुए है। वहाँ से संकलित कर इस स्तम्भ में प्रकाशित कर रहा हूँ।] —सपादक

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

आप तो निरन्तर स्वसमय-स्वसमय में ही लगाते है और मनुष्य जन्म का यही कर्त्तव्य है। परोपकार की अपेक्षा स्वोपकार में विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है, बल्कि यों कहिए परोपकार मिथ्यादृष्टि से ही होता है, सम्यग्दृष्टि से परोपकार हो जावे यह बात अन्य है। परन्तु उसके आशय में उपादेयता नहीं क्योंकि यावत् औदयिक भाव हैं। उनका सम्यग्दृष्टि अभिप्राय से कर्ता नहीं, क्योंकि वे भाव अनात्म हैं। इसका यह तात्पर्य है जो यह भाव अनात्म-जो मोहादि कर्म, उनके निमित्त से होते हैं अतएव अस्थाई हैं, उन्हें क्या सम्यग्ज्ञानी उपादेय समझता है ? नहीं समझता है। इसके लिखने का यह तात्पर्य है, जैसे सम्यग्दृष्टि के यह श्रद्धा है—जो मैं पर का उपकारी नहीं। इसी तरह उसकी यह भी दृढ़ श्रद्धा है, जो मैं पर का

उपकारी नहीं। निमित्त नैमित्तिक संबंध से उपकार हो जाना कुछ अन्तरंग श्रद्धान का बाधक नहीं। इसी प्रकार अनुपकारादि भी जानना। सत्य पथ के अनुकूल श्रद्धा ही मोक्ष मार्ग की आदि जननी है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पत्र आया समाचार जाना। आपके भाई साहब अच्छे हैं, यह भी आपके पुण्योदय की प्रभुता है। शांति का कारण स्वच्छ आत्मा में है—स्थानों में नहीं। बाहर जाकर भी यदि अन्तरङ्ग में मूर्च्छा है शांति नहीं मिलती। केवल उपयोग दूसरी जगह अन्य मनुष्यों के संपर्क में परिवर्तित हो जाता है और वह उपयोग उस समय अन्य के सम्बन्ध की चर्चा से आकुलित ही रहता है। निराकुलता का अनुभव न घर में है और न बाहर। यदि शांति की इच्छा है तब निरन्तर यह चेष्टा होना श्रेयस्करी है। जो यह हमारे रागादिक हैं यही संसार के कारण हैं, अन्य नहीं। निमित्त कारण में दोषारोपण स्वप्न में भी नहीं होना चाहिए। यहाँ का वा वहाँ का वातावरण एक सा है, चाहे नागनाथ कहो चाहे सर्पनाथ कहो।

गणेशप्रशाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय सुमेरचंद जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पत्र आया समाचार जाना। आपने लिखा शांति नहीं मिलती सो ठीक है, संसार में शांति नहीं और अविरत अवस्था में शांति का मिलना असम्भव है। बाह्य परिग्रह हो को हम अशान्ति का कारण समझ रहे हैं। वास्तव में अशान्ति का कारण अन्तरङ्ग की मूर्छा है, जब तक उसका अभाव न होगा तब तक बाह्य वस्तुओं के समागम में भी हमारी सुख-दुख की कल्पना होती रहेगी। जिस दिन वह शान्ति हो जावेगी बिना प्रयास के शान्ति का उदय स्वयमेव हो जायेगा। अतः बलात्कार से कोई शान्ति चाहे तब होना असम्भव है। एक तो मूर्छा की अशान्ति एक उसके दूर करने की अशान्ति। अतः जो उदय के

अनुकूल सामग्री मिली है उसी में समतापूर्वक काल को बिताना श्रेयस्कर है।

ता० २३-११-३९ आपका शुभचिंतक :
गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द जी,
योग्य दर्शनविशुद्धि !

पत्र आया समाचार जाने। क्या लिखें? कुछ अनुभव में नही आता। वास्तव जो वस्तु है—वह मोह के अभाव में होती है, जो कि वीतरागी के ज्ञान का विषय है। और जो लेखनी द्वारा लिखने में आता है उसे उस तत्त्व का अनुभव नही। जैसे रसनेन्द्रिय द्वारा रस का ज्ञान आत्मा में होता है, उसको रसना निरूपण करे यह मेरी बुद्धि में नही आता। अत क्या लिखू, यावती इच्छा है आकुलता की जननी है। जो जानने और लिखने की इच्छा है यह भी आकुलता की माता है। यह क्या परमानन्द का प्रदर्शन करा सकती है? परन्तु जैसे महान् ग्रन्थों में लिखा है कि—जीव का मूल-उद्देश्य सुख प्राप्ति है, उसका मूल कारण मोह-परिणामों की सन्तति का अभाव है। अत जहाँ तक बने इन रागादिक परिणामों के जाल से अपनी आत्मा को सुरक्षित रक्खो, इन पराधीनता के कार्यों से मुख मोड़ो, अपना तत्व अपने में ही है। केवल उस ओर हो जाओ और इस 'पर' की ओर पीठ दो। ३६ पना जो आपसे है उसे छोड़ो और जग से जो ६३ पना है उसे छोड़ो, जगत की तरफ जो दृष्टि है वह आत्मा की ओर कर दो। इसी में श्रेयो-मार्ग है। दोहा—"जगतैं रहो छत्तीस (३६) हो, राम चरण छै तीन (६३) तुलसीदास पुकार कहें, है यही मतो प्रवीण।" जहाँ तक हो आत्म कैवल्य की भावना ही उपादेय रूप से भावना। द्वैतभावना ही जगत की जननी है। शारीरिक क्रिया न तो साधक है, और न बाधक है। इसी तरह मानसिक तथा वाचनिक जो व्यापार है उनकी भी यही गति है। इनके साथ जो कषाय की वृत्ति है यही जो कुछ है सो अनर्थ की जड़ है इनके पृथक् करने का उपाय एकत्व भावना है।

आपका :
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीमान् लाला सुमेरचंद जो,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

आप स्वयं विज्ञ हैं। कल्याण का मार्ग मेरी तो यह सम्मति है, अपने आत्मा को त्याग कर अन्यत्र नहीं। और जब तक अन्यत्र देखने की हमारी प्रकृति रहेगी, कल्याण का मार्ग तब तक मिलना दुर्लभ है। हम लोगों की अन्तरंग भावना अति दुर्बल हो गई है। अपने बल को तो एक रूप से भूल ही गये हैं। पंचपरमेष्ठी का स्मरण—इसका अर्थ नहीं था जो हम एक माला फेर कर कृत्यकृत्य हो जावें, उसका यह प्रयोजन था जो आत्मा ही के यह पांच प्रकार के परिणमन हैं। उसमें एक सिद्धपर्याय तो अन्तिम अवस्था है। यह वह अवस्था है जिसका फिर अंत नही होता। ४ अवस्थायें औदारिक शरीर के सबंध से मनुष्य पर्याय में ही होती है, उसमें अरहन्त भगवान तो परम गुरू है जिनकी दिव्य ध्वनि से संसार के आतप शान्त होने का उपदेश जीवों को मिलता है, और ३ पद है सो साधक हैं। यह सर्व आत्मा की ही पर्यायें है, उनके स्मरण से हमारी आत्मा मे यह ज्ञान होता है, जो यह योग्यता हमारी आत्मा में है। हमें भी यही उपाय कर चरम अवस्था का पात्र होना चाहिए। लौकिक राज्य जब पुरुषार्थ से मिलता है तब मुक्ति साम्राज्य का लाभ अनायास हो जावे, यह नहीं। लोक कहावत है—"मांगे मिले न भीख, बिन मागे मोती मिले।" अतः अरहन्तादि परमेष्ठो के भिक्षा मांगने मे हम ससार बंधन से नही छूट सकते। जिन उपायों को श्री गुरू ने दर्शाया है—उनके साधन से अवश्यमेव वह पद अनायास प्राप्त हो जावेगा। ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। यदि वह नहीं है तव बाह्य में व्रत, नियम, शील, तप के होने पर भी अज्ञानी जीवों को मोक्ष का लाभ नहीं। अज्ञान ही बध का कारण है। उसके अभाव होने पर बाह्य में व्रत, नियम, शील, तप आदि का अभाव भी है। तब भी ज्ञानी जीवों के मोक्ष का काभ होता है। अतः निमित्त कारणों को उतना ही आदर देना योग्य है, जो अन्तरंग में बाधा न पहुंचे। सर्वोत्तम तो यह उपाय सर्व से उत्कृष्ट और सरल है, जो निरंतर अपनी दिनचर्या की प्रवृत्ति देखता रहे। जो आत्मा को अनुचित जान पड़े उसे त्यागे। और जो उचित जान पड़े किन्तु परमार्थ से बाह्य हो, उसे भी त्यागे। सीढ़ी का उपयोग वहीं तक उपादेय है जब तक महल

में नहीं पहुंचा है। भोजन का उपयोग क्षुधा निवृत्ति के अर्थ है एवं ज्ञान का उपयोग रागादि निवृत्ति के अर्थ है। केवल अज्ञान निवृत्ति ही नहीं, अज्ञान निवृत्ति रूप तो वह स्वय है। इसी तरह बाह्य व्रत का उपयोग चारित्र के अर्थ है। यदि वह न हुवा तब जैसा व्रती वैसा अव्रती। मन्द कषाय व्रत का फल नहीं, वह तो मिथ्यात्व गुणस्थान में भी हो जाता है। अतः व्रत का फल वास्तव में चारित्र है उसी से आत्मा में पूर्ण शांति का लाभ होता है।

आपका शुभचिंतक :
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत शांतिप्रकृति प्रिय लाला सुमेरचंद जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

मेरी बुद्धि में तो प्रायः हम ही लोग स्वकीय शांति के बाधक हैं। जितने भी पदार्थ संसार में है वह एक भी शान्त स्वभाव के बाधक नहीं। वर्तन में रक्खी हुई मदिरा अथवा डिब्बी में रक्खा हुआ पान पुरुष में विकृति का कारण नही, एवं पर पदार्थ हमें बलात्कार से विकारी नही करता। हम स्वयं अपने मिथ्या विकल्पों से उनमें इष्टानिष्ट कल्पना कर सुखी और दुखी होते हैं। कोई भी पदार्थ न तो सुख देता और न दुःख देता है। जहाँ तक बने आभ्यन्तर परिणामों की विशुद्धितावृद्धि पर सदैव सावधान रहना चाहिए। गृहस्थों के सर्वथा अहित हो होता हो यह नियम नही। हित और अहित का सम्बन्ध सम्यक्त्व और मिथ्याभाव से है। जहाँ पर सम्यक्त्वभाव है वहाँ हित और जहाँ मिथ्याभाव है वहाँ पर अहित है। मिथ्याभाव तथा सम्यक्त्वभाव गृहस्थ व मुनि दोनों अवस्थाओ में होता है, हाँ, साक्षान्मोक्षमार्ग का साधक दिगम्बरत्व जो है सो गृहस्थ के उस पद का लाभ परिग्रह के अभाव ही में होता है। अतः जहाँ तक हमारा पुरुषार्थ है, श्रद्धान को निर्मल बनाना चाहिए तथा विशेष विकल्पों को त्याग, त्यागमार्ग में रत रहना चाहिए। पद के अनुसार शांति आती है। इस अवस्था में वीतरागावस्था में की शांति की श्रद्धा तो हो सकती है परन्तु उसका स्वाद नही आ सकता। भोजन बनाने से उसका स्वाद आ जावे यह सम्भव नहीं, रसास्वाद तो चखने से

आवेगा। आप जानते हैं—जो इस समय घर को त्याग कर मनुष्य कितने दम्भ करता है और वह अपने को प्रायः जघन्य मार्ग में ही ले जाता है। अतः जब तक आभ्यन्तर कषाय न जावे, घर छोड़ने से कोई लाभ नहीं। कल्याण की प्राप्ति आतुरता से नहीं, निराकुलता से होती है। वैद्यराज जी से कह देना, ऐसी औषधि सेवन रोगियों को बताओ जो इस जन्मज्वर से छूटें, शरीर तो पर ही है।

आपका शुभचिंतक :
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पत्र आया समाचार जाने। पत्रादिक पढ़ने से क्या होता है, होने की प्रकृति तो आभ्यंतर में है। जल में जो लहर उठती है वह ठंडी है, बालू में वह बात नहीं। शांति का मार्ग मूर्छा के अभाव में है। जहाँ पर शांति है वहाँ पर मूर्छा नहीं और जहाँ मूर्छा है वहाँ शांति नहीं। बाह्य पदार्थ मूर्छा में निमित्त होते है। यह मूर्छा दो तरह की है। १ शुभोपयोगिनी, २. अशुभोपयोगिनी। उसमें पदार्थ भी २ तरह के निमित्त हैं। अर्हद्भक्ति आदि जो धर्म के अंग है उनमें अर्हदादि निमित्त है और विषय कषायादिक हैं वे पाप के अंग है। उनमें स्त्री, पुत्र, कलत्रादि निमित्त कारण हैं। अतः इन बाह्य पदार्थों पर ही यदि अवलम्बित रहें तब कहाँ तक ठीक है समझ में नहीं आता, ऐसा भी देखा गया है, जो बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं, यह जीव स्वयमेव कल्पना कर शुभाशुभ परिणामों का पात्र हो जाता है। इससे श्रीस्वामी कुंदकुंद म.राज का मत है कि अध्यवसान भाव ही बंध का जनक है। अध्यवसान में बाह्यद्रव्य निमित्त पड़ते हैं। अतः उनके त्याग का उपदेश है फिर भी बुद्धि में नहीं आता। जैसे अशुभोपयोग के कारण बाह्य पुत्रादिक है, उनका त्याग कैसे करें। उन्हें छोड़ देवें, फिर क्या छोड़ने से त्याग हो गया ! तब यही कहना पड़ेगा, उनके द्वारा जो रागादिक परिणति होती थी वही त्यागना चाहिए। अथ च स्त्री आदि तो दृश्य पदार्थ हैं उन्हें छोड़ भी देगा परन्तु अर्हदादिक तो अतीन्द्रिय हैं, उन्हें कैसे छोड़ें। क्या उन्हें ज्ञान में न आने देवें, क्या करें ? कुछ

समझ में नहीं आता। अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकलता है जो-जो ज्ञान में भले ही आवे, रुचि रूप ज्ञेय न होना चाहिए। तो क्या अरुचि रूप इष्ट है ? अरुचि भी तो द्वेष का अनुमापक है। तब क्या करें ? जड़ बन जावें ? यह भी नहीं हो सकता। ज्ञान का स्वभाव ही स्व-पर प्रकाशक है। ज्ञेय उसमें आता ही रहेगा, तब यही बात आई जो स्व-पर प्रकाशक ही रहे। इससे अगाड़ी न जावे अर्थात् राग-द्वेष रूप न हो। यह भी समझ में नहीं आता, जो ज्ञान रागादिक रूप होता है। क्योंकि ज्ञान ज्ञेय का ज्ञाता है, ज्ञेय से तादात्म्य नहीं रखता, तब क्या करें ? यही करो कि अपनी परिणति रागादिक रूप न होने दो। क्या यह हमारे बस की बात है ? हम लाचार हैं, दुखी है, इस जाल से नहीं बच सकते। यह सब तुम्हारी कायरता और अज्ञानता ही का कटुक फल है जो रागादिकों को दु:खमय, दु:ख के कारण जानकर भी उनसे पृथक् होने का प्रयत्न नहीं करते। अच्छा, अब आपसे हम पूछते है क्या रागादिक होने का तुम्हारे विषाद है ? तुम पर समझ रहे हो ? तब तुम्हें उनके दूर करने का प्रयास करना चाहिए। केवल यही भीतरी भाव है। जो हम तुच्छ न समझे जावें। इसी से ऊपरी बातें बना देते जो रागादिक अनिष्ट दु:खदाई हैं, पर हैं। जिस दिन सम्यग्-ज्ञान के द्वारा इनके स्वरूप के ज्ञाता हो जाओगे फिर इनके निर्मूल होने में अधिक बिलम्ब न लगेगा। रागादिक के होने में तो अनेक बाह्य निमित्तों की प्रचुरता है और स्वाभाविक परिणति के उदय में यह बाह्य सामग्री अकिंचित्कर है। अत: स्वाधीन पथ को छोड़कर पराधीनपथ में आनंद मानना, केवल तुम्हारी मूर्खता है। यावत् यह मूर्खता न त्यागोगे, कहीं भी चले जाना तुम्हारा कल्याण असंभव है। क्या लिखें ? इन विकल्प जालों ने सन्निपात की तरह मूर्छा का उदय आत्मा में स्थापित कर दिया है, जिससे चेत हो नहीं होता। यह सब बातें मोह के विभव की हैं। यदि भीतर से हम जान जावें तब सन्निपात ज्वर क्या ! काल ज्वर तक चला जा सकता है। अतः बाह्य प्रक्रिया छोड़कर आभ्यंतर प्रक्रिया का अभ्यास करो। अनायास एक दिन निसंग हो जावोगे। निसंग तो पदार्थ है ही, परन्तु तुम्हारी जो बंध में एकत्व की कल्पना है, उसका अभाव हो जावेगा।

आपका शुभचितक :
गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

दर्शन विशुद्धि !

अब तो ऐसी परिणति बनाओ जो हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला, वह बुरा, यह वासना मिट जावे। यही वासना बंध की जान है। आज तक इन्ही पदार्थों में ऐसी कल्पना करते-करते संसार ही के पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओं को छोड़ दिया। किन्तु इनमें कोई तत्त्व न निकला। निकले कहाँ से ? वस्तु तो वस्तु में है। पर में कहाँ से आवे ? पर के त्याग से क्या ? क्योंकि यह तो स्वयं पृथक् है, उसका चतुष्टय स्वयं पृथक् है। किन्तु विभावदशा में जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्याय का त्याग हो शुद्ध स्वचतुष्टय उत्पादक है। अतः उसकी ओर दृष्टि-पात करो, लौकिक चर्चा को तिलांजलि दो। आजन्म से वही आलाप तो रहा, अब एक बार निज आलाप की तान लगाकर तानसेन हो जावो। अनायास सर्व दुःख की सत्ता का अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखें ? आप अपने साथी को समझा देना। यदि अब द्वन्द्व में न पड़ें तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्व के फल की रक्षा के अर्थ फिर द्वन्द्व में पड़ना कहाँ तक अच्छा होगा, सो समझ में नहीं आता। इससे शांति नहीं मिलेगी। प्रत्युतः बहुत अशांति मिलेगी। परन्तु अभी ज्ञान में नहीं आती। धतूरे के नशे में धतूरे का पत्ता भी पीला नजर आता है। आपका अनुरागी है समझा देना।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

बन्धुवर ! कल्याणपथ निर्मल अभिप्राय से होता है। इस आत्मा ने अनादिकाल से अपनी सेवा नही की। केवल पर पदार्थों के संग्रह में ही अपने प्रिय जीवन को भुला दिया। भगवान अर्हन्त का यह आदेश है जो कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थों मे जो आत्मीयता है वह छोड़ो। यद्यपि पर पदार्थ मिलकर अभेद रूप नहीं होते, किन्तु हमारी कल्पना में वह अभेदरूप ही हो जाते हैं। अन्यथा उनके वियोग में हमें क्लेश नहीं होना चाहिए। धन्य उन

जीवों को है जो इस आत्मीयता को अपने स्वरूप में ही अवगत कर अनात्मीय पदार्थों से उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याण के भागी होते हैं। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य पदार्थ कुछ भी बाधक नहीं, और न साधक है। साधक-बाधक तो अपनी ही परिणति है। संसार का मूल हम स्वयं हैं। इसी प्रकार मोक्ष के भी आदि कारण हम ही है। और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहज-भावों की महिमा है। और जब उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मी का साम्राज्य मिलना असंभव है। उसकी कथा तो अजेय है। सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म संग्रह रूप हो गये हैं, उनके अभाव बिना शुद्धस्वरूपात्मक मोक्ष प्राप्ति दुर्लभ है। अतः जहाँ तक उद्यम की पराकाष्ठा इस पर्याय से हो सके। केवल एक मोह के कृश करने मे ही उसका उपयोग करिये। और जहाँ तक बने, पर-पदार्थ के समागम मे वहिर्भूत रहने की चेष्टा करिये। यही अभ्यास एक दिन दृढतम होकर ससार के नाश का कारण होगा। विशेष क्या लिखू ? विशेषता तो विशय ही मे है। आजकल का वातावरण अति दूषित है, इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचंद्र जी

योग्य दर्शनविशुद्धि !

मैं क्या उपदेश लिखू ? उपदेश ओर उपचेष्टा आपकी आत्मा स्वयम् है। जिसने अपनी आत्मपरिणति को मलिन भावों से तटस्थता धारण कर ली, वही संसार समुद्र के पार हो. पार हो गया। यह बुद्धि छोड़ो। पर से न कुछ होता है, न जाता है। आप ही से मोक्ष और आप ही से संसार है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय,

दर्शन विशुद्धि !

पत्र आया, समाचार जाने।

आपने जो आस्राव्य और आस्रावक के विषय से प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है—

आत्मा और पुद्गल को छोड़कर शेष ४ द्रव्य शुद्ध हैं। जीव और पुद्गल ही २ द्रव्य हैं, जिनमें विभावशक्ति हैं। और इन दोनों में ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक संबंध द्वारा विकार्य्य और विकारक-भाव हुआ करते हैं। जिस काल में मोहादिक कर्म के उदय में रागादि रूप परिणमता है, उस काल में स्वयं विकार्य हो जाता है। और उसके रागादिक परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परि-णमता है। अतः उसका विकारक भी है। इसका यह आशय है, जीव के परिणाम को निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते हैं, और पुद्गल कर्म का निमित्त पाकर जीव स्वयं रागादिरूप परिणम जाता है। अतः आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रव का करने वाला भी है। इसी प्रकार जब आत्मा में रागादि नहीं होते हैं उस काल ये आत्मा स्वयं सम्वार्य्य है और संवर का करने वाला भी है। अर्थात् आत्मा के रागादि निमित्त को पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते थे। अब रागादिक के बिना स्वय तद्रूप नहीं होते, अतः सवारक भी है।

अतः मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तकों का अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञान की आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही न हो किन्तु उसके अंदर मोहादिभाव भी न हो। ज्ञान मात्र कल्याण मार्ग का साधक नहीं। किन्तु रागद्वेष की कल्मषता से शून्य ज्ञान मोक्ष-मार्ग का साधन क्या, स्वयं मोक्ष-मार्ग है। जो विष मारक है, वही विष शुद्ध होने से आयु का पोषक है। अत चलते, बैठने, सोते, जागते, खाते, पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते, जो मनुष्य अपनी प्रवृत्ति को कलंकित नहीं करता वही जीव कल्याणमार्ग का पात्र है।

बाह्यपरिग्रह का होना अन्य बात है। और उसमें मूर्छा होना अन्य बात है। अतः बाह्य परिग्रह के छोड़ने की चेष्टा न करो, उसमें जो मूर्छा है, संसार की लतिका वही है, उसको निर्मूल करने का भगीरथ प्रयत्न करो, उसका निर्मूल होना अशक्य नहीं। अन्तरग की कायरता का अभाव करो, अनादि काल का जो मोहभावजन्य अज्ञान-भाव हो रहा है उसे पृथक् करने का प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्ता में लौकिक मनुष्य संलग्न रहते हैं कि हे प्रभो! हमारे कर्म कलंक मिटा दो, आप बिना मेरा कोई नहीं, कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ?

इत्यादि करुणात्मक वचनों द्वारा प्रभु को रिझावने का प्रयत्न करते हैं, प्रभु का आदेश है—यदि दुःख से मुक्त होने की चाह है, तब यह कायरता छोड़ो, और अपने स्वरूप का चिंतन करो। ज्ञाता दृष्टा रहो, बाह्य मत जाओ, यही कल्याण का पथ है।

तदुक्तम्—यः परमात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यः नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥

जो आत्मा है वही मैं हूँ और मैं हूँ सो परमात्मा है। अत. मैं अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नहीं, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है।

यह अत्युक्ति नही। जो आत्मा राग-द्वेष शून्य हो गया वह निरन्तर स्वरूप में लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है। उपकार अपकार के भाव रागी जीवों में ही होते है। अतः परमात्मा की भक्ति का यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होने की चेष्टा करो। भक्ति का अर्थ गुणानुराग, यद्यपि गुणों के विकास का बाधक है, फिर भी उसका स्मारक होने से निचली दशा में होता है किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनु-पादेय ही जानता है। अत आत्मा-बाधक कारणों मे अरुचि होना ही आत्मतत्व की साधक चेष्टा है। अत. परमात्मा को ज्ञान मे लाकर यह भावो, यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा और मैं इसका आराधक–इस भेद भावना का अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्मा के अन्तर को स्पष्टतया जान अंतर के कारण मेट दो अर्थात् अंतर का कारण रागादिक ही तो है। उन्हे नैमित्तिक जान इसमें तन्मय न हो। यही उनके दूर होने का उपाय है, जहाँ तक अपनी शक्ति हो इन्हीं रागादिक परिणामों के उपक्षीण का प्रयास करना। जब हमें यह निश्चय हो गया जो आत्मा पर से भिन्न है तब पर में आत्मीयता की कल्पना क्या हमारी मूढ़ता का परिचायक नही है? तथा जहाँ आत्मीयता है वहाँ राग होना अनिवार्य है। अत· यदि हम अपने को सम्यक्ज्ञानी मानते हैं, तब हमारा भाव कदापि पर में आत्मीयता का नहीं होना चाहिए। रागादिकों का होना चारित्रमोह के उदय से होता है। हो, किन्तु अहंबुद्धि के अभाव से अल्पकाल मे निराश्रित होने से स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तीर्थंकर प्रभु केवल सिद्ध भक्ति करते हैं। अतः उनके द्वारा अतिथि-संविभागरूप दान होने की संभावना नहीं।

गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत लाला मुन्नालाल जी—जगाधरी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पर्व के दिनों में सानन्द शुभोपयोग का लाभ लिया होगा। यह कोई लाभ नहीं क्योंकि यह लाभ स्थाई नहीं, स्थाई न होने का हेतु यह है जो यह लाभ परजन्य तथा परनिमित्तक तथा अनात्मीय भावों से हुवा है, उस परिणाम से जन्य जो कार्य होगा वह स्थिर नही हो सकता है। इससे प्रतीति होती है जो इसके आभ्यन्तर कोई गुप्त तथ्य छिपा है और उसी की सिद्धि के अर्थ यह आचार्यों का बच्चे को बतासे के अन्दर कटुक औषधि देने के तुल्य प्रयास है। जो भद्र आत्मा ! इस तत्व को जानते हैं वे ही इस पर्व के वास्तव तत्व को जानते हैं और वही इससे भाविनी अनुपम शान्ति के पात्र होते हैं। आपके पिता जी को अब इस तत्व का श्रीगणेश आरम्भ हो गया है जो कालान्तर में स्थाई रूप धारण करेगा। आप लोग भी इस पर्व का फल क्रोधादि कषायों की निवृत्ति जान उसके ही सद्भाव की चेष्टा करेंगे। इसके आभ्यन्तर सर्व शान्ति और सुख है। आवश्यकता हमें इस बात की है जो निरन्तर निष्कपट पुरुषों की सङ्गति करें, ऐसे समागम से अपने को रक्षित रक्खे, जो स्वार्थ के प्रेमी हैं। श्री देवाधिदेव अरहंत भगवान की उपासना हमें यह पाठ सिखाती है कि यदि कल्याण चाहते हो तब तो आत्मा आंशिक रूप से शुद्ध हो उसी का समागम तुम्हारे कल्याण का कारण होगा।

गणेशप्रसाद वर्णी

समाधिमरण

□ **शिवलाल जी कृत**

[श्री भगत ब्र० सुमेरचन्द्र जी को उर्दू का अच्छा अभ्यास था। प्रारम्भिक शिक्षा इनकी उर्दू में ही हुई थी। श्री शिवलाल जी कृत समाधिमरण की तर्ज उर्दू के अनुरूप है तथा उर्दू के अनेक शब्द इसमें आये हैं। इसलिए भगत जी इसे पढ़ते-पढ़ते भावविभोर हो जाते थे। अतः यहाँ दिया जा रहा है।] —संपादक

परम पंच परमेष्ठी ध्यान धर,
    परम ब्रह्म का रूप आया नजर।
परम ब्रह्म करि मुझको आई परख,
    हुवा उर में सन्यास का अब हरख ॥१॥
लगन आत्माराम सों लग गई,
    महा मोह निद्रा मेरी भग गई।
खुली दृष्टि चैतन्य चिद्रूप पर,
    टिकी आन कर ब्रह्म के रूप पर ॥२॥
परम रस की अब तो गटागट मेरे,
    शुद्धातम रहस की रटारट मेरे।
यहाँ आज रोने का क्या शोर है,
    मेरे हर्ष आनन्द का जोर है ॥३॥
निरंजन की कथनी सुनावो मुझे,
    न कुछ और बतिया बताओ मुझे।
न रोओ मेरे पास इस वक्त में,
    कि तिष्ठा हूँ खुश हाल इस वक्त में ॥४॥
जरा रोवने का [1]तअम्मुल करो,
    नजर मिहरवानी की मुझ पर धरो।

---

१. सब्र।

उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब,
तजो मोह मिथ्यात का सब विटम्ब ॥५॥
जरा आत्मा भाव उर आने दो,
परम ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो।
मुझे ब्रह्म चर्चा से वर्ते हुलास,
करो और चर्चा न तुम मेरे पास ॥६॥
जो भावे तुम्हे सो न भावे मुझे,
न झगड़ा जगत का सुहावे मुझे।
ये काया पे [1]पुटकी पड़ी मौत की,
[2]निदा आई शिवलोक के नाथ की ॥७॥
कि ये देह चिरकाल की है मुई।
मेरी जिंदगानी से जिंदा हुई॥
तजा हमने नफरत से ये मुर्दा आज।
चलो यार अब चल करें मुक्ति राज्य ॥८॥
जिसम झोंपड़ी को लगी आग जब,
हुई मेरे वैराग को जाग तब।
सम्हाले मैं रत्नत्रय अपने तीन,
लिया ब्रह्म अपने को मैं आप चीन ॥९॥
जिसे मौत है उसको है, मुझको क्या,
मुझे तो नहीं फिर भय मुझको क्या।
मेरा नाम तो जीव है जीव हूँ,
चिरंजीव चिरकाल चिरजीव चिरजीव हूँ ॥१०॥
अखंडित, अमंडित, अरूपो अलख,
अदेही, अनेही, अजयी, अचख।
परम ब्रह्मचर्य परम शांततम,
निरालोक लोकेश लौकांततम ॥११॥
परम ज्योति परमेश परमात्मा,
परम सिद्ध प्रसिद्ध शुद्धात्मा।
चिदानंद चैतन्य चिद्रूप हूँ,
निरंजन निराकार शिव भूप हूँ ॥१२॥

---

१. पोटली। २. आवाज।

चिता में धरो इसको ले जाके तुम,
हुए तुमसे रुखसत क्षिमा लाके हम ।
कही जावो ये देह क्या इससे काम,
तजी इसकी रगवत[1] मुहब्बत तमाम ।।१३।।
मुए संग रह रह बहुत कुछ मुए,
मगर आज निर्गुण निरंजन हुए ।
तिहूँ जगमें सन्यास की ये घड़ी,
मेरे हाथ आई ये अद्भुत जड़ी ।।१४।।
विषय विष से निर्विष हुवा आज मैं,
चलाचल से अविचल हुवा आज मै ।
परम ब्रह्म लाहा लिया आज मैं,
परम भाव अमृत पिया आज मैं ।।१५।।
घटा आत्म उपयोग की आई झूम,
अजब[2] तुर्फ तुरिया बनी रंग भूम ।
शुकल ध्यान टालों की टकोर है,
निजानद झाझन की झकोर है ।।१६।।
अजर हूँ अमर हूँ न मरता कभी,
चिदानद शाश्वत न डरता कभी ।
कि ससार के जीव मरते डरे,
परम पद का शिवकाल वंदन करे ।।१७।।

१. इच्छा । २. अनुपम ।

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी की प्रिय प्रार्थना

* इष्ट प्रार्थना *

श्री जी सदा आपको मैं नमूं। कुदेवों की श्रद्धा हिये से बमूं ॥
धरूं ध्यान मैं आत्माराम का। मुझे आसरा है तेरे नाम का॥
तेरी चाह दिल और जिगर में रहे। तेरी शान्ति मुद्रा नजर में रहे॥
तुम्हारे गुणों का करूं जाप मैं। सहूँ फिर न कर्मों के आताप मैं॥
मगर गुण अनन्ते गहूँ किस तरह। जवां एक से मैं कहूँ किस तरह॥
गुणवाद तेरा मैं किस विधि कहूँ। तुम्हें काम धेनू या नव निधि कहूँ॥
रसायन कहूँ या कि पारस कहूँ। कि चिन्तामणी या सुधारस कहूँ॥
कल्पवृक्ष या बेल चित्रा कहूँ। बा या पुरुषा सर्व मित्रा कहूँ॥
धनत्तर कहूँ या कि स्याना कहूँ। तिहुँ लोक में तुम को माना कहूँ॥
गलत है धनत्तर जो तुम को कहा। कहा और कवियों ने मैं भी कहा॥
धनत्तर ने क्या काम बढ़ कर किया। कर्म रोग उस से न मेटा गया॥
यह वह रोग है जिससे तड़फा करे। तुम्हारे सिवा कौन अच्छा करे॥
कहां पूरषा चीत्रा बेल क्या। कहां बेल और आपसे मेल क्या॥
कल्प वृक्ष जड़ आप चेतन स्वरूप। कहीं जड़का चेतनसे मिलता है रूप॥
सुधारस भी है इक स्वादिष्ट रस। वही उसकेरसिया जो रसना के बस॥
कहां शान्त रस से करे हमसरी। तेरी शान्त मुद्रा परम रस भरी॥
है चिन्तामणी एक पत्थर की जात। नहीं ज्ञान विज्ञान की इस में बात॥
जो पारस ने लोहे को सोना किया। किया इसने सोना ही तो क्या किया॥
बनाया न लोहे को अपने समान। उसे किसतरह फिर मैंसमझूं महान॥
किया गौर हर चन्द हर तौर मैं। न यह 'वशफ पाया किसी और मैं॥
शरण जो चरण की तुम्हारे गहे। बिला शक शुबा आफ्सा हो रहे॥
रसायन से देखी न सन्तुष्टता। वि५य और कषायों की है पुष्टता॥
न कुछ मेरे नजदीक नवनिधि बड़ी। चक्रवर्ती के दर पर है रहती खड़ी॥
नहीं काम धेनू भी कहना बजा। भला आपसे उसको निस्वत है क्या॥

पशु जातिकी वह तो एक गाय है। जगत निन्द तिर्यञ्च पर्याय है ॥
न मालुम क्यों ऐसी तमसील दी। यह जिन स्तुति है न कि दिल्लगी ॥
है साता करमका उदय जब तलक। नहीं होते हैं यह जुदे तब तलक ॥
अशुभ कर्म का जब उदय आवता। नहीं एक का भी पता पावता ॥
यह 'सबअगरज पुन्य के हैं विशेष। जहां पुन्य है वहां पर है कलेश ॥
नही पाप और पुन्यका तुममें लेश। कि हो सुध-बुध और निरंजन महेश ॥
निराकार और तुम तदाकार भी। निराधार भक्तों के आधार भी ॥
यह प्रत्यक्ष निष्पक्ष कहना पड़ा। नही कोई दुनियां में तुमसे बड़ा ॥
बड़ा होना तो एक बडी बात है। न तुम सा कोई बा करामात है ॥
तेरी वीतराग और विज्ञानता। की है सारे देवों में प्रधानता ॥
कि यह गुण किसी देवमें भी नहीं। नही है नहीं है नहीं है नहीं ॥
सकल प्राणियों का तू मां बाप सा। हुआ है न होगा कोई आह सा ॥
तुम्ही प्रेम की सबको शिक्षा करो। तुम्ही तरिस्थावर की रक्षा करो।
तुम्हारे सिवाय किसमें यह 'दसतरस। किये शांति से तिहुंलोक सी बस ॥
अहिंसा मई है तुम्हारा धर्म। सो निज धर्मका जिसने जाना मर्म ॥
कर्म उसके ज्यादा से ज्यादा अड़े। तो बस सात भवजग मे धरने पड़ ॥
यही जैन सिद्धान्त का सार है। किसी को नही इससे इन्कार है ॥
मगर बाज लोगोंका है यह ख्याल। कि जब मोक्ष होता नही वर्तकाल ॥
तो फिर किसलिए शील संयम धरे। अनुवर्त पाले वा भूखों मरें ॥
यह है काल पंचम न अब कुछ बने। जो हो काल लब्धि तो सबकुछ बने ॥
यहां से विदेहों में लेकर जन्म। महा व्रत धारें लहे मोक्ष हम ॥
न शिवपुर पहुंचते लगे देर कुछ। ये रास्ता है सीधा नही फेर कुछ ॥
जो श्रद्धा हो सर्वज्ञ के वाक की। मुजरिसम हो तस्वीर 'ईदराक की ॥
तिहूं लोक त्रिकाल का ज्ञान हो। 'तगैयरतबद्गुल न एक आन हो ॥
वहां से यहां फिर न आना रहे। सदा एक सा वहां जमाना रहे ॥
जमाने की उलटन न पुलटन वहां। वहां की है जो बात वह यहां कहां ॥
जहां सुख अनन्ता सदा सुवास्ता। जो है तत्वज्ञानी उन्हें भासता ॥
हर एक को नहीं मिलती तेरी खबर। बिना स्यादवादी न आए नजर ॥
बजाहिर दिगम्बर तेरा भेश है। न बसतर न शस्तर का लवलेश है ॥
किया कर्म शत्रु का फिर कैसे घात। यह आश्चर्यकारी तुम्हारी है बात ॥
तुम्हारे गुणो को जो माला रटे। सभी पाप एकक्षण में उनके कटें ॥
न कुछ तुमको करना न धरना पड़े। न मैदान में आकर लड़ना पड़े ॥

¹सफा दिलसे ले जो कोई तेरा नाम । सरें खुदबखुद उनके कारज तमाम ।।
परख शील की जब सीया के हुई । अगनकुन्ड किसने किया जलमई ।।
गिरा जब श्रीपाल सागर मझार । बताओ किया किसने सागर से पार ।।
वोह सिंह और सूकर नवल बानरा । उतारे कहो कौन जप तप करा ।।
हरएक भक्तके दुःखको भंजन किया । कि अंजनभी तुमने निरंजन किया ।।
कथा और पुन्यात्माओं की क्या । उतारे जब ऐसे भी पापी महां ।।
नहीं ऊंच और नीचका कुछ बिचार । कि आया शरणमें दिया उसकोतार ।।
मेरी बार अब देर किस वास्ते । लगाई है मैं टेर इस वास्ते ।।
तू निज रसका रसिया बना दे मुझे । पराधीनता से छुड़ा दे मुझे ।।
परम धाम बटिया बतादे मुझे । सो आनन्द कथनी रटा दे मुझे ।।
करूं जबमैं इस तनसे ⁷अदमे रफर । रहें होश कायम मेरे सर बसर ।।
न मरने की तकलीफ महसूस हो । न जीनेपर दिल अपना मायूस हो ।।
न उलफत हो अपने जरोमाल से । ⁸नरगवत ⁹अय्यालऔर ¹⁰इत्तफालसे ।।
विषय और कषायों से विराग हो । विवेक और विराग से राग हो ।।
फकत आपका एक सहारा रहे । क्षमा भाव सबसे हमारा रहा ।।
न हों जबतलक आयुकर्म इखतताम । जबां से निकलता रहे तेरा नाम ।।
नमोकार हो या कि अरहन्त हो । तुम्हारे ¹¹तसौवर में देहांत हो ।।
रहा अब तलक तो मैं बहर आतमा । करो आतमा मेरी परमातमा ।।
नहीं और कुछ चाह मेरे जिनेश । मेरे दूर कर दीजिए राग द्वेष ।।
इन्हींसे है पुन्य और इन्हीसे है पाप । इन्हींसे है संसार भरमकी ताप ।।
इन्हीं से हैं झगड़े बखेड़े तमाम । न हों ये रहूं मैं सदा ¹²शादकाम ।।
कि जब पुन्य और पाप का नाश हो । तुम्हारे निकट 'राम' सा दास हो ।।
न पास अपने मालिकके जोदास हो । न वो दास विश्वास की रास हो ।।
समझदार यह अपना मुझे कीजिए । बस अब पास अपने बुलालीजिए ।।

---

१. गुण, २. यथार्थ, ३. शक्ति, ४. परमात्मस्वरूप, ५. परिवर्तन,
६. स्वच्छ, ७. मौत, ८. प्रेम, ९. बूढ़े, ११. ध्यान, १२. निराकुलता में

बारहमासा वज्रदन्त चक्रवर्ति

(यती नैनसुखदास कृत)

सवैया—बन्दूं मैं जिनेन्द्र परमानन्द के कन्द,
जगवन्द विमलेदु जडता ताप हरनकू ।
इन्द्र धरणिन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र,
जाहि सेव राव रक भवसागर तरन कू ।
निर्बन्ध निद्वन्द दीन बन्धु दयासिन्धु,
कर उपदेश परमार्थ करन कूं ।
गाव नैनसुखदास बज्रदन्त बारहमास,
मेटो भगवन्त मेरे जन्म मरन कू ।।१।।

दोहा—बज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय ।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय ।।२।।

बैठे बज्रदन्त आय आपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठ राय बत्तीस हजार हैं ।
इन्द्र कैसे भागसार राणी छ्याणवे हजार,
पुत्त एक सहस्र महान् गुण गाए है ।।
जाके पुण्य प्रचण्ड से नमे बलबड शत्रु,
हाथ जोड मान छोड सब दरबार हैं ।
ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली,
तामे देखो अलि अम्बुज मरण भयकार हैं ।।३।।

अहो यह भोग महा पाप को सयोग देखो,
डाली मे कमल तामे भौंरा प्राण हरे है ।
नासिका के हेतु भयो भोग मे अचेत,
सारी रैन के कलाप मे विलाप इन करे है ।
हम तो पाँचो ही के भोगी भये जोगी नाहिं,
विषय कषायन के जाल माहि मरे हैं ।

जो न अब हित करूं जाने कौन गति परूं,
सुतन बुला के यों बच अनसरे हैं ॥४॥

अहो सुत जग रीति देख के हमारी नीति,
भई है उदास बनोबास अनुसरेंगे ।
राजभार सीस धरो परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सूं लरेंगे ॥

सुनत बचन तब कहत कुमार सब,
हम तो उगाल कूं न अंगीकार करेंगे ।
आप बुरो जान छोड़ो हम जग जाल छोड़ो,
तुमरे ही संग महाव्रत धरेंगे ॥५॥

चौपाई—सुत आसाढ़ आयो पावस काल, सिर पर गर्जत यम विकराल ।
लेहु राज सुख करहुं विनीत, हम बन जाय बड़ेन की रीति ॥६

गीता छन्द—जांय तप के हेत बन को भोग तज संयम धरें ।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हो संसार सागर से तरें ।
यही हमारे मन बसी तुम रहो धीरज धार के ।
कुल आपने की रीति चलो राजनीति विचार के ॥७॥

चौपाई—पिता राज तुम कीनो बौन, ताहि ग्रहण हम समरथ हौन ।
यह भौंरा भौगन को व्यथा, प्रगट करत कर कंगन यथा ॥८॥

गीता छन्द—यथा करका कांगना सन्मुख प्रगट न जस परे ।
त्योंही पिता भौंरा निरखि भवभोग से मन थरहरे ॥
तुमने तो बन के बास ही को सुख अङ्गीकृत किया ।
तुमरी समझ सोई समझ हमारी हमें नृप पद क्यों दिया ॥६

चौपाई—श्रावण पुत्त कठिन बनवास, जल थल सीत पवन के आस ।
जो नहिं पले साधु आचार, तो मुनि भेष लजावे सार ॥१०

छन्द—लाजे श्री मुनीभेष तातें देह का साधन करो ।
सम्यक्त्व युत व्रतपंच में तुम देशव्रत मन में धरा ॥
हिंसा असत चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधार के ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥११

चौपाई—पिता अङ्ग यह हमरो नाहिं, भूख प्यास पुद्गल परछांहि ।
पाय परीषह कबहुं न भजें, धर संन्यास मरण तन तजें ॥१२

छन्द—संन्यास धर तनकूं तजें नहिं दंश मंशक से डरें।
रहें नग्न तन बन खण्ड में जहाँ मेघ मूसल जल परें ॥
तुम धन्य हो बड़भाग तज के राज नृप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥१३
चौपाई—भादों में सुत उपजे रोग, आवें याद महल के भोग।
जो प्रमाद वस आसन टले, तो न दयाव्रत तुमसे पले ॥१४
छन्द—जब दयाव्रत नहिं पले तब उपहास जग में विस्तरे।
अर्हत और निर्ग्रन्थ की कहो कौन फिर सरधा करें ॥
तातें करो मुनी दान पूजा राज काज संभाल के।
कुल आपने की रीत चालो मन धारकें ॥१५
चौपाई—हम तजि भोग चलेंगे साथ, मिटे रोग भव भव के तात।
समता मंदिर में पग धरें, अनुभव अमृत सेवन करें ॥१६
छन्द—करें अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरें।
आलाप मेघ मल्हार सोहैं सप्तभंगी स्वर भरे ॥
धृग् धृग् पखावज रोग भोग कू सन्तोष मन में कर लिया।
तुमरी समझ सोई हमरो समझ० ॥१७
चौपाई—आशुन भोग तजे नहि जाये, भोगी जीवन को डसि खांय।
मोह लहर जिय की सुध हरे, ग्यारह गुण थानक चढ़ गिरे ॥१८
छन्द—गिरे थानक ग्यारवें से आय मिथ्या भू परे।
बिन भाव की थिरता जगत में चतुर्गति के दुःख भरे ॥
रहे द्रव्य लिङ्गी जगत में बिन पौरुष हार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार ॥१९
चौपाई—विषय विड़ार पिता तन कसें। गिर कन्दर निर्जन बन बसें।
महामंत्र को लखि परभाव, भोग भुजङ्ग न चाले धाव ॥२०
छन्द—घाले न भोग भुजङ्ग तब क्यों मोह की लहरा चढ़े।
परमाद तज परमात्मा प्रकाश जिन आगम पढ़ें।
फिर काल लब्धि उद्योत होय सुहोय यों मन थिर किया।
तुमरी समझ हमरी समझ० ॥२१
चौपाई—कातिक में सुत करें विहार, काटे कांकर चुभें अपार।
मारें दुष्ट खैंच के तीर, फाटे तन थरहरे शरीर ॥२२

छन्द—थरहरे सागरी देह अपने हाथ काढ़त नहिं बने।
नहिं और काहूं से कहे तब देह की थिरता हनें।
कोई खेंच बांधें थम्भ से कोई खाय आंत निकाल के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥२३

चोपाई— द पद पुण्य धरा में चलें, कांटे गाप सकल द्रल मलें।
क्षमा ढाल तल धरें शरीर, विफल करें दुष्टन के तीर ॥२४

छन्द—कर दुष्ट जन के तीर निष्फल दया कुंजर पर चढ़ें।
तुम सग समता खड्ग लेकर अष्ट कर्मन से लड़ें॥
धन धान्य यह दिनवार प्रभु तुम योग का उद्यम किया।
तुमरी सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥२५

चौपाई—अगहन मुनि तरनो तर रहें, ग्रोषम शैल शिखर दुख सहें।
मुनि जब आवत पावस काल, रहे साध जन बन विकराल ॥२६

छन्द रहें बन विकराल में जहाँ सिंह श्याल सतावहीं।
कानों में बीछू बिल करें और व्याल तन लिपटावहीं॥
दे कष्ट प्रेत पिशाच आन अङ्गार पाथर डारके।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥२७

चौपाई - हे प्रभु बहुत बार दुःख सहे, बिना केवली जाय न कहै।
शीत उष्ण नर्कन के तात, करत याद कम्पे सब गात ॥२८

छन्द—गात कम्पे नर्क से लहै शोत उष्ण अथाय ही।
जहां लाख योजन लोह पिण्ड सु होय जल गल जाय ही॥
असिपत्र बन के दुःख सहे परवस स्व-वस तप ना किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमारी हमें नृपपद क्यों दिया ॥२९

चौपाई—पौष अर्थ अरू लेहु गयंद। चौरासी लख मुखकन्द।
कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु। लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु ॥३०

छन्द—लेहु हल लख कोड़ि षटखण्डभूमि अरू नवनिधि बड़ी।
लो देश को विभूति हमारी राशि रत्नन की पड़ी।
धर देहूं सिर पर छत्र तुमरे नगर धोख उचार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥ ३१

चौपाई—अहो कृपानिधि तुम परसाद। भोगे भोग सर्व मरयाद॥
अब न भोग की हमकूं चाह। भोगन में भूले शिव राह ॥३२

छन्द—राह भूले मुक्ति की बहुबार सुरगति संचरे।
जहां कल्प बृक्ष सुगन्ध सुन्दर अपछरा मन को हरे॥
उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पीकें दिन लिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरो हमें नृप पद क्यों दिया॥३३

चौपाई—माघ सघैन सुरन तें सोय। भोग भूमियन तें नहिं होय।
हर हरि अरु प्रतिहरि से वीर। संयम हेत धरें नहिं धीर॥३४

छन्द—संयम कूं धीरज नहिं धरें नहि टरें रण में युद्ध सूं।
जो शत्रु गण गजराज कूं दलमले पकर विरुद्ध सू।
मुनि कोटि सिल मुदगर देह फैंक उपार के।
कुल आपने की० ॥३५

चौपाई—बंध योग उद्यम नहिं करें। एतो तात कर्म फल भरे॥
बांधे पूर्व भव गति जिसी। भुगतें जीव जगत में तिसी॥३६

छन्द—जीव भुगतें कर्म फल कहो कौन विधि संयम धरें।
जिन बंध जैसा बांधियो तैसा ही सुख दुख सो भरें।
यों जान सबको बंध में निर्बंध का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया॥३७॥

चौपाई—फाल्गुन चाले शीतल वाय। थर थर कपे सबकी काय॥
तब भव बंध विदारण हार। त्यागें मूढ़ महाव्रत सार॥३८

छन्द—सार परिग्रह व्रत विसारें अग्नि चहुंदिश जा रही।
करे मूढ़ सीत वितीत दुर्गति गहें हाथ पसार ही।
सो होय प्रेत पिशाच भूतरु ऊत शुभगति टारके।
कुल आपने की रीति० ॥३९

चौ०—हे मतिवन्त कहा तुम कही। प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ कच्छ की काय। सहे दुःख जलचर परजाय॥४०

छन्द—पाय पशु परजाय परबस रहे सिंग बंधाय के।
जहाँ रोम रोम शरीर कम्पे मरे तन तरफाय के।
फिर गेर चाम उबेर स्वान सिचान मिल श्रोणित पिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया॥४१

चौ०—चैत लता मदमोय होय। ऋतु बसन्त में फूले सोय।
तिनकी इष्ट गन्ध के जोर। जागे काम महाबल फोर॥४२

छन्द—फोर बलको काम जागे लेयमन पुरछी नहीं।
फिर ज्ञान परम निधान हरि के करे तेरा तीन ही।
इतके न उतके तब रह गए कुगति दोऊ कर क्षार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति बिचार के ॥४३

चौ०—ऋतु बसन्त बन में नहिं रहें। भूमि पसाण परीषह सहें।
जहाँ नहिं हरति काय अंकूर। उड़त निरंतर अहनिशि धूर ॥४४

छन्द—उड़े बन की धूर निशि दिन लगें काँकर आय के।
सुन प्रेत शब्द प्रचण्ड के काम जाँय पलाय के॥
मत कहो अब कछु और प्रभु भव भोग में मन काँपिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥४५

चौ०—मास बैशाख सुनत अरदास। चक्री मन उपज्यो विश्वास।
अब बोलन को नाही ठौर। मैं कहूं और पुत्र कहें और ॥४६

छन्द—और अव कछु मैं कहूँ नहीं रीति जग की कीजिये।
एक बार हमसे राज लेके चाहे जिसको दीजिये।
पोता था एक षटमास का अभिषेक कर राजा कियो।
पितु संग संग जगजाल सेती निकस बन मारग लियो ॥४७

चौ०—उठे बज्रदन्त चक्रेश। तोस सहस भूप तजि अलवेश।
एक हजार पुत्र वड़भाग। साठ सहस्र सती जग त्याग ॥४८

छन्द—त्याग जग कू ये चले सब भोग तज ममता हरी।
शमभाव कर तिहुँलोक के जीवों से यो विनती करी।
अहो जेते हैं सब जीव जग में क्षमा हम पर कोजियो।
हम जैन दीक्षा लेत है, तुम बैर सब तज दीजियो ॥४९

चौ० वैर सबसे हम तजा अर्हंत का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साहू की शरण सर्वज्ञ के मत चित दिया।
यो भाव पिहिताश्रव गुरुन ढिंग जैन दीक्षा आदरी।
कर लौंच तज के सोच सबने ध्यान में दृढ़ता धरी ॥५०

चौ० -जेठ मास लू ताती चले। सूकं सर कपिगण मदगलें।
ग्रीष्म काल शिखर के सोस। धरो अतापन योग मुनीश ॥५१

छन्द - धरयोग आतापन सुगुरू ने तब शुक्ल ध्यान लगाइयो।
तिहुं लोकभानु समान केबल ज्ञान तिन प्रगटाइयो।

बज्रदन्त मुनीश जग तज कर्म के सन्मुख भये।
निज काल अरु पर काज करके समय मे शिवपुर गये ॥५२

चौ० सम्यक्त्वादि सुगुण आधार के। भये निरजन निराकार।
आवागमन तिलाँजल दई। सब जीवन की शुभगति भई ॥५३

छन्द भई शुभगति सबन की जिन शरण जिनपति की लई।
पुरुषार्थ सिद्ध उपाय से परमार्थ की सिद्धी भई।
जो पढे बारामास भावन भाय चित्त हुलसाय के।
तिनके हो मगल नित नये अरु विघ्न जाय पलाय के ॥५४

दोहा नित नित नव मगल बढे जो गावे गुणमाल।
सुरनर के सुख भोग कर पावे मोक्ष रसाल ॥५५

सवैया दो हजार महीन विहत्तर घटाय अब,
विक्रम को सवत् विचार के धरत हूँ।
अगहन असि त्रयोदसी मृगाक वार,
अर्द्ध नि ।। माहि यहि पूरण करत हूँ ॥
इति श्री बज्रदन्त चक्रवर्ती को वृत्तान्त,
रच के पवित्र नैन आनन्द भरत हूँ।
ज्ञानवान करो शुद्ध जान मोरि बाल बुद्धि,
दोष ये न रोष करो पायन परत हूँ ॥५६

प्रेम-महेश के परिणय

पर

पूज्य पितामह भगत जी का शुभाशीर्वाद

श्री चिरजीवी बेटी प्रेमलता

दर्शन विशुद्धि !

यह जानकर मोहजनित प्रसन्नता हुई, कि मिती चैत बदि ६ सं० २००६ को शुभ लग्न में चिरजीव महेशचन्द्र सुपुत्र ला० विश्वम्भर-दास जी खतौली निवासी के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण होना निश्चय हुवा है। अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रही हो जो मोक्ष मार्ग को प्रवृत्ति मे सहायक साधन है। अब तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जायगा। तुम्हारे महान पुण्योदय से तुम्हारे पतिदेव तथा सभी कुटुम्बी-जन धर्मात्मा पुरुषों का सम्पर्क तुम्हें प्राप्त होगा। यह तुम्हारो योग्यता पर निर्भर है। यदि स्त्री सुबोध और विदुषी हो तो वह घर को स्वर्ग धाम बना लेती है और सकल जनों—अपने पूज्य सास ससुर जेठ जिठानी ननद और पति देव आदि की आज्ञा का पालन कर तथा उनकी सेवा सुश्रुषा द्वारा उन्हे अपने अनुकूल बना लेती है जिससे गृह मे शान्ति का साम्राज्य चारो ओर छा जाता है।

निराकुलता ही सकल सुख की जननी है आकुलता ही दुख एवं कलह की जनक है शान्ति के वातावरण मे ही धर्म व सुख प्राप्त हो सकता है।

१. धर्मात्मा वीर माता की कूख से ही तीर्थंकर जैसे स्व-परोपकारी समस्त ससार के जीवों का कल्याणकर्त्ता महापुरुषों का जन्म हुवा है। जिनके तीर्थ से परम्परया मोक्ष मार्ग की प्रवृति चलती है। जिनका अनुकरण कर भव्य जीव अपना आत्म-कल्याण कर लेते हैं।

२. वैष्णव कुल में जन्म लेने वाली वीर धर्मात्मा माताने ही केवल जैन-धर्म के णमोकार मन्त्र का श्रद्धान होने के बल पर ही पूज्य गुरुवर श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी जैसे महान पुरुष, विद्या

प्रेमी जैन संस्कृति के प्रसारक महामानव को जन्म दिया जो इस भौतिकवाद के जमाने में भी अध्यात्मवाद का चारों ओर स्रोत बहा कर लाखों भव्य जीवों के हृदय को सिंचन करते हुए मोक्ष मार्ग में लगा कर स्वयं अपरिग्रहवाद, श्रमणसंस्कृति को अपना कर शान्ति प्राप्त कर रहे हैं।

३. वीर माताओं ने ही परोपकारी महात्मा गांधी, जवाहरलाल, सुभाष बाबू, लक्ष्मी बाई आदि महान पुरुषों को जन्म दिया है ये सब विदुषी माताओं के ऊपर ही निर्भर है।

४. प्रथम शिक्षा बच्चों को बाल्यावस्था में माता के द्वारा ही प्राप्त होती है, यदि माता विदुषी धर्मात्मा हो तब बच्चों के कोमल-हृदय मे धार्मिक सस्कारो का अकुरारोपण कर देती है जिससे शनै-शनैः वृद्धि को प्राप्त होकर स्वोपकार के साथ-साथ परोपकार करते हुए मोक्ष मार्ग के पथिक होकर पूर्ण निराकुलता प्राप्त कर लेते है। जिसका उदाहरण विदुषी माता मदालसा का मौजूद है जब वह अपने बच्चे को पालने मे झुलाती थी तब हिलोरियां देते हुए उसके कोमल हृदय मे वीरता का पाठ पढ़ा धार्मिक सस्कार भर रही थी।

श्लोक :– शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमाया परिवर्जितोसि।
ससार स्वप्नं तज मोहमुद्रां मंदालसा पुत्रमिदं ह्युवाच॥

माता के द्वारा बाल्य जीवन में भरे हुए संस्कारों की बदौलत कुंद-कुंद भगवान अध्यात्मवाद समयसार आदि महान ग्रन्थों का निर्माण कर भव्य जीवो को अध्यात्म रस का पान कराते हुए स्वयं निजरस में मग्न हो मोक्ष मार्ग के पथिक बन गए।

५. रत्नत्रय का साधनभूत शरीर जिसकी स्थिति का कारणभूत आहार दान भी निपुण माता के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है जिसको सदगृहस्थ ही दान देकर मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति को चला सकता है। इसलिए बेटी तुमको वीरता के साथ अपने कुटुम्ब की रक्षा करते हुए, संयम को पालन कर कुटुम्बीजनों का पालन-पोषण करते हुए, अतिथियों को आहार दान देते हुए, मनुष्य जन्म को सफल बनाना है और यही मनुष्य जन्म पाने का सार है।

६. यही भगवान का भव्य जीवों के प्रति आगम मे उपदेश है कि यदि आप संसार में सुखी होना चाहते हो तो मिथ्यात्व को त्याग

अपने को पहिचान कर अपनी शान्ति के बाधक पर-पदार्थों में जो यह राग द्वेष मोह परिणति है उसको मूर्छा का कारण जान बुद्धिपूर्वक छोड़ने की कोशिश करो और उसकी सहायक सहेली जो तुम्हारी इच्छाएं हैं उनको अपना शत्रु जान बुद्धिपूर्वक निर्मल करने की कोशिश करो। यही मोक्ष मार्ग में सच्चा पुरुषार्थ और शान्ति का सरल उपाय भगवान ने बताया है इसलिए जो. हमने अपनी जिन्दगी की जरूरियातों-आवश्यकताओं को व्यर्थ बढ़ा रखा है जैसे कि पाउडर आदि पोतना सिनेमा आदि देखना बाजार की चाट मिठाई आदि अभक्ष्य का भक्षण करना, उसको छोड़ना ही होगा तभी हम गृहस्थी में रह कर सुख शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकते हैं इसलिए हमें नित्य प्रति षट् आवश्यक का पालन जो गृहस्थियों का नित्य प्रति मुख्य कर्तव्य है उसको नियमपूर्वक पालन करना ही होगा :

देव पूजा गुरूंपास्तिः स्वाध्याय, संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिने दिने ॥

(१) देव पूजा -सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का कारण वीताराग सर्वज्ञ हितोपदेशी भगवान के गुणो में अनुराग करते हुए पर, पदार्थ जो अष्ट द्रव्य उनका द्रव्य और भाव से त्याग कर वीतराग के अंश की प्राप्ति कर पूर्ण वीतराग होने की नित्य प्रति भावना जागृत करना और इसी का अनुकरण शुरू से बच्चों को कराना ये ही देवदर्शन का माहात्म्य है :—

(२) गुरूपास्ति—साक्षात गुरू तो अर्हन्त परमेष्टी हैं, अपर गुरू गणधादि दिगम्बर आदि मुनि उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष मन वचन काय से भक्ति करना, उनके बताए हुए आठमूल गुण आदि का भली भांति पालन करते हुए उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना यही गुरू भक्ति है।

आठ मूल गुण

मद्य-पल-मधु-निशाशन पञ्चफली विरति पञ्चकाप्तनुतिः।
जीवदया जलगालनमिति, च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥
श्री पंडित प्रवर आशाधर जी

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥
श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी

(१) जीव दया-स्वपर शान्ति के बाधक पांचपाप हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील परिग्रह की मूर्छा का एक देश त्याग करना इसके लिए नित्य प्रति हर समय इस पाठ को याद करना ।
आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्
जो बाते तुम्हें अच्छी न लगें दूसरों के प्रति नहीं करना यही अहिंसा धर्म है ।

(२) शहद :—मधु मक्खी के अंडो के घात से उत्पन्न हुआ एवं मधु मक्खी का वमन लस जीवों का पिण्ड बुद्धि को मलिन करने वाला हिंसा का कारण पाप का मूलभूत ऐसे शहद को दूर से ही त्याग करना ।

(३) मांस . त्रसजीवों के घात से उत्पन्न, त्रस जीवों का पिंड बुद्धि को मलिन कर क्रूरता पैदा कर स्वपर विवेक को नष्ट करने वाला ऐसे मांस को दूर से ही त्याग करना ।

(४) शराब : - मादक पदार्थ सड़ाने से असंख्यात त्रस जीवों की उत्पत्ति होने पर उनके घात मे उत्पन्न हुई महा हिंसा के पाप के बंध का कारण मन को मोहित कर स्वपर विवेक को नष्ट कर दुर्गन्ध मय पागल बनाने वाली ऐसी वस्तु को उत्तम कुलीन को दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ।

(५) पाँच उदम्बर—बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर, पाकर फल, त्रस जीवों का पिंड मन को मलीन कर क्रूरता पैदा कर स्वपर विवेक को नष्ट करने वाला पाप के बीज दूर से ही त्याग करना ।

(६) रात्रि भोजन सूर्यास्त होने पर जहाँ तक हो सके चारों प्रकार के आहार का त्याग करना खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय, क्योंकि सूर्य अस्त होने पर असंख्यात सूक्ष्म जन्तुओं का संचार शुरू हो जाता है जो स्थूल दृष्टि में नजर नहीं आते । यदि कोई विषैला जन्तु भक्षण किया जावे तो

नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं जो स्वास्थ्य के लिए बाधक हैं इसलिए रात्रि भोजन त्याग श्रावको का मुख्य धर्म है।

(७) जल छानना – बर्तन के मुह से तिगुना मोटा दोहरा सफेद छन्ना से पानी छानकर जिवानी यथायोग्य स्थान पर पहुँचा कर जल काम मे लाना चाहिए इस क्रिया के करने से जीव दया का पालन तो स्वयमेव ही हो जाता है परन्तु स्वास्थ्य वर्धक निर्दोष जल भी पीने को प्राप्त हो जाता है इसलिए यह भी श्रावक की मुख्य क्रिया है।

(८) देव दर्शन देवदर्शन नित्य प्रति मदिर मे जाकर देवदर्शन द्वारा शुभ परिणाम कर पच परमेष्टी आदि का जाप दे महान् पुण्य सचय कर परम्पराय मोक्ष प्राप्ति करने का साधन है। इन आठ मूल गुणो को धारण किये वगैर नाम मात्र भी श्रावक सज्ञा आचार्यों ने नही कही है इसलिए इनको धारण कर पाक्षिक श्रावक के व्रत पालन करते हुए मुनि व्रत की भावना भाते हुए नैष्ठिक श्रावक होना चाहिए, यही मनुष्य जन्म पाने का सार है, जो महा ऋद्धिधारी इन्द्र को स्वर्ग मे भी दुर्लभ है।

(३) स्वाध्याय नियम पूर्वक प्रति दिन किसी एक धार्मिक ग्रन्थ का मनन पूर्वक कम से कम घण्टा आधघन्टा स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए और ग्रन्थ को आद्योपान्त पूर्ण करना चाहिए। जो समझ मे न आवे उसको एक कोरी कापी मे नोट कर लेवे, जब कोई विशेषज्ञ विद्वान् मिले उनसे पूछकर निर्णय कर लेवे और नित्य प्रति श्री दशाध्याय सूत्र जी, भक्तामर जी, छहढाला, मेरी भावना आदि का जबानी पाठ जरूर याद करना, येही गांठ का धन है, जो हमेशा काम आने वाला है। स्वाध्याय को ही भगवान ने अन्तरङ्ग तप मे निर्जरा का कारण बताया है, यही तत्व विचार का जनक, अन्तरङ्ग सयम का मूलभूत भेद विज्ञान का कारण है।

(४) सयम—सयम १२ प्रकार है–छ काय के जीवो की रक्षा पाँच इन्द्रिय छट्ठे मन को वश मे करना। बेटी ये हमेशा ध्यान रखना कि पव के दिनो मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना। जहाँ तक हो सके अपने हाथ से आटा पीस कर शुद्ध भोजन करने मे रुचि रखना। बाजार की चाट मिठाई आदि अभक्ष्य भक्षण नही करना, सिनेमा आदि देखने का हमेशा के लिए त्याग करना। यही आत्म बल को बढाने वाले निराकुलता के साधन शान्ति के मूल हैं, इस सयम के बल पर ही महारानी सीता जी के शील के प्रभाव के सामने रावण जैसे विभवशालो महा सुभट का भी बल नही चला, उसे भी परास्त होकर जमीन मे घुटने टकने पड। यहाँ तक कि महा भयानक अग्नि-कुड भ। शात होकर चारा तरफ जलमय हो गया। वीर स्त्रियाँ हो स्वय अपने आत्मबल से अपनी रक्षा कर सकती हैं और स्त्रीलिग को छद कर परब्रह्मरूप मोक्ष प्राप्त कर लेती है। परन्तु बेटी, यह ध्यान अवश्य रखना कि हमारी मोक्ष मार्ग की घातक जो यह क्रोध, मान, माया, लोभ–अन्तरङ्ग राग द्वष मोह परिणति है उसको ही आत्मशान्ति घात करने वाले महान् शत्रु पहिचानकर वीरता के साथ बुद्धि पूवक उनका अश-अश निर्मूल करना ही होगा।

(५) तप पर पदार्थों मे राग-द्वष रहित समता भाव से जितना बने त्रिकाल सामायिक का अभ्यास करन। ही पूर्ण सच्ची शान्ति प्राप्त करने का उपाय है। तप के भद १२ प्रकार आगम मे भगवान् ने बताये है उनका देखकर यथा योग्य भलीभाँति पालन करना।

(६) दान—पर पदार्था मे मूर्च्छा का त्याग कर चार प्रकार के पात्र मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाओ को भक्ति से तथा दुखित भुक्षित को करुणा से चार प्रकार का दान-आहार दान शुद्ध औषधि दान पात्र को शास्त्र दान अपात्र को धर्मोपदेश और रोगी को भोजन औषध आदि देना अभय

दान प्राणि मात्र को यथा योग्य वैय्यावृत्ति करनी। बेटी इस बात का पूर्ण ध्यान रखना कि अपने द्वारे पर कोई दुखित भुखित जीव निराश न हो जावे। यदि कोई योग्य साधन न मिले तब कुछ न कुछ रकम दान मे परोपकार के लिए निकाल कर ही भोजन करना चाहिए, यही त्याग मार्ग मोक्ष का जनक है।

बेटी प्रेमलता !

तुम्हारे पूज्य माता पिता पू० चाचा चाची पू० गुरू आदि ने तुम्हारा पालन पोषण शिक्षण करने तथा तुमको योग्य बनाने मे पूर्ण सहयोग देकर जो तुम्हारा महान् उपकार किया उसको कभी नही भूलना, हमेशा यही भावना बनाये रखना कि हे भगवान् मुझे उनके प्रति कभी प्रत्युपकार करने का अवसर ही न आवे यानी उनको कभी किसी प्रकार का कष्ट ही प्राप्त न हो।

मेरा शुभाशीर्वाद

तुम्हारे शुभ विवाह सस्कार के उपलक्ष मे मेरा तो यही शुभाशीर्वाद है कि तुम पतिव्रता महारानी सीता की तरह पति सेवा करती हुई पूर्व पुण्यकर्म के उदय से मिले पूर्ण विभव को भोगती हुई मुनिदान पूजादि शुभ प्रवृति करती हुई मोक्ष मार्ग की प्रवृति मे प्रगति शील परोपकारी सतान का पालन पोषण करती हुई महारानी मदालसा की धार्मिक शिक्षा देकर बालक को मोक्ष मार्गी बनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई श्राविका, उत्कृष्ट सयम धारण कर महाव्रत आदि धारण कर स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गादिक मे इन्द्रादिक के भौतिक सुखो को हेय जानती हुई पुण्य कर्म का फल भोग मनुष्य जन्म पाय महाव्रत धारण कर कर्म को खिपाय केवलज्ञान प्राप्त कर पति देव के साथ-साथ ही निराकुलता के स्थान मोक्ष मे परमात्मपद के अव्याबाध निराकुलता मय पूर्ण सुख को प्राप्त करो।

तुम्हारा शुभचिन्तक
सुमेरचन्द वर्णी
इटावा यू० पी०

मार्च १९५०

प्रेमलता के विवाह पर पूज्य ब्र० गणेशप्रसाद जी वर्णी का पत्र

श्रीयुत महाशय लाला मुन्नालाल जी !

योग्य दर्शन विशद्धि ! आपके यहाँ श्री प्रेमलता का विवाह है और जिस महाशय के सुपुत्र के साथ विवाह है वह योग्य है। दम्पति को यह शिक्षा देना जो प्रयोजन मोक्षमार्गोपयोगी सन्तान है तथा दूसरा प्रयोजन विषयेच्छा निवृति है जिसने इस पर दृष्टिपात की वे ही ससार मे सुख के पात्र हे तथा केवल बाह्याडम्बर से दानो रक्षित रहे, यह भी उपदेश देना तथा जो उन्हे द्रव्य का लाभ हो उसमे से जो उन दोनो की हार्दिक इच्छा ो दान कर तथा एक दान यह कर जो सन्तान की उत्पत्ति के बाद दो वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य से रहे तथा इतने दिन अवश्य ब्रह्मचर्य से रहे अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्लिका, ३ सोलह कारण, दशलक्षण जन्म तिथि दोनो की।

चैत्र वदि १ स० २००६

आपका शुभचितक
गणेशप्रसाद वर्णी।

नोट–१ मर्यादातिक्रम कर व्यय करना– अच्छा नही।
२ बाह्यप्रशसा के लिए व्यय करना पानी विलोवन के सदृश है।
३ मान कषाय के वशीभूत होकर दान करना खाक के लिए चन्दन दग्ध करने के सदृश है।

समाधिमरण पत्र पुञ्ज

ये पत्र ब्र० दीपचन्द्र वर्णी और स्व० उदासीन ब्र० मौजीलाल जी सागर वालो के समाधि लाभार्थ उनके पत्र प्रत्युत्तर मे पूज्य प० गणेश-प्रसाद जी वर्णी के द्वारा लिखे गये है। एक-एक पक्ति मे आत्मरसिकता झलक रही है अत शान्तिपूर्वक प्रत्येक वाक्य का परिशीलन कर उसका मन्तव्य हृदयगत करना चाहिय। य पत्र सवप्रथम ब्र० कस्तूरचन्द्र जी नायक जबलपुर के द्वारा समाधिमरण पत्र-पुञ्ज नाम से प्रकाशित किये गये थे। द्वितीय बार वर्णी स्नातकपरिषद् सागर की ओर से सतना अधिवशन के समय 'वर्णी अध्यात्म पत्रावली' के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हे। भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी को आत्म-साधना म इन पत्रो से बहुत सहयाग प्राप्त हुआ था इसलिये उन्हे समाधिमरण के इच्छुक महानभावो के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे है। —सपादक

श्रीमान् वर्णी जी

योग्य शिष्टाचार।

सत्य दान तो लोभ का त्याग है और उसको मैं चारित्र का अश मानता हू। मूर्छा की निवृत्ति ही चरित्र है। हमको द्रव्य त्याग मे पुण्य-बन्ध की ओर दृष्टि न देनी चाहिये, किन्तु इस द्रव्य से ममत्व निवृत्ति द्वारा शुद्धोपयोग का वर्धक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व तो निवृत्तिरूप है। जहा उभय पदार्थ का बन्ध है वही ससार है जहा दोनो वस्तु स्वकीय-स्वकीय गुण पर्यायो मे परिणमन करती है वही निवृत्ति है, वही सिद्वान्त है। कहा भी है -

> सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि सेव्यतां
> शुद्ध चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम्।
> एते ये तु समुल्लसन्ति विविधाभावा पृथगलक्षणा-
> स्तेहू नास्मि यतोऽत्रमे मम परद्रब्य समग्रा अपि॥

अर्थ—यह सिद्धान्त उदारचरित्र और उदारचरित्र वाले मोक्षा-र्थियो को सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्मरहित)

चैतन्यस्वरूप परम ज्योति वाला सदैव हूं। तथा ये जो भिन्न-भिन्न लक्षण वाले नाना प्रकार के भाव प्रकट होते हैं, वे मैं नहीं हूं क्योंकि ये संपूर्ण परद्रव्य हैं।

इस श्लोक का भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदय में संसार का आताप कहां जाता है? पता नही लगता। आप जहां तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्था की ओर दृष्टि न देकर निजात्मा की ओर लक्ष्य देते हुए उसी के स्वास्थ्य की औषधि का प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसको कोई भी अवस्था हो, उसका ज्ञाता द्रष्टा ही रहना। सो ही समयसार में कहा है—

को नाम भणिज्ज वुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो॥

भावार्थ—'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसा ज्ञानी पण्डित नही कह सकता। क्योकि ज्ञानी जीव तो आत्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्यों से मनुष्य पर्याय की उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय दो द्रव्य मिल कर सुधाहरिद्रावत् (हल्दी और चूना के समान) एक रूप नही परिणमे है। वहाँ तो दोनो के वर्ण गुण का एक रूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नही है क्योंकि दोनों एक अचेतन-पुद्गल द्रव्य के परिणमन हैं किन्तु यहां पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य है। इनका एक रूप परिणमना न्याय प्रतिकूल है क्योंकि दो पृथक् द्रव्यों का एक रूप परिणमन त्रिकाल में भी संभव नही है। पुद्गल के निमित्त को प्राप्त होकर आत्मा रागादि रूप परिणम जाता है। फिर भी रागादि भाव औदयिक है अत बन्ध जनक है, आत्मा को दुःख जनक है, अतः हेय हैं। परन्तु शरीर का परिणमन आत्मा से भिन्न है अतः न वह हेय है और न वह उपादेय है। इस ही को समयसार में श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्य ने निर्जराधिकार में लिखा है—

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ॥

अर्थ—यह शरीर छिद जाओ, अथवा भिद जाओ, अथवा ले जाओ, अथवा नष्ट हो जाओ, जैसे-तैसे हो जाओ तो भी मेरा परिग्रह नही हैं।

इसी से सम्यग्दृष्टि के परद्रव्य के नाना प्रकार के परिणमन होते हुए भी हर्ष विषाद नहीं होता। अतः आपको भी इस समय शरीर की क्षीण अवस्था होते हुए कोई विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है।

चरणानुयोग में जो परद्रव्यों की शुभाशुभ में निमित्तत्व की अपेक्षा हेयोपादेय को व्यवस्था की है, वह अल्पप्रज्ञ के अर्थ है, आप तो विज्ञ हैं। अध्यवसान को ही बन्ध का जनक समझ उसी के त्याग की भावना करना और निरन्तर 'एगो मे सासदो आदा णाणदंसण लक्खणो' अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो बाह्य पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं।

मरण क्या वस्तु है? आयु के निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्याय का वियोग मरण, तथा आयु के सद्भाव में पर्याय का सम्बन्ध सो ही जीवन है। अब देखिये, जैसे जिस मन्दिर में हम निवास करते हैं उसके सद्भाव-असद्भाव में हमको किसी प्रकार का हानि लाभ नहीं, तब क्यों हर्ष-विषाद कर अपने पवित्र भावों को कलुषित किया जावे। जैसा कि कहा है—

> प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलस्यात्मनो
> ज्ञानं सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
> अस्यातो मरण न किञ्चिद्भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनं
> नि शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति॥

अर्थ प्राणों के नाश को मरण कहते हैं और प्राण इस आत्मा का ज्ञान है। वह ज्ञान सत् रूप स्वय ही नित्य होने के कारण कभी नष्ट नहीं होता है। अ[illegible] इस आत्मा का कुछ भी मरण भी नही है तो फिर ज्ञानी को मरण का भय कहां से हो सकता है? वह ज्ञानी स्वयं निःशल्य होकर निरन्तर स्वाभाविक ज्ञान को सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप ऐसे मरण का प्रयास करना जो परम्परा मातृ. स्तन्यपान से बच जाओ—पुन. जन्म लेकर माता का दुग्धपान न करना पड़े। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुआ है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याण का मन्दिर है, अतः पर पदार्थों को किंचित्-

मात्र भी आप अपेक्षा न करें। अब पुस्तक द्वारा ज्ञानाभ्यास करने की आवश्यकता है। यह कार्य न तो उपदेष्टा का है और न समाधिमरण में सहायक पण्डितों का है। अब तो अन्य कथाओं के श्रवण करने में समय को न देकर उस शत्रु सेना का पराजय करने में सावधान होकर यत्नशील हो जाओ।

यद्यपि निमित्त को प्रधान मानने वाले तर्क द्वारा बहुत-सी अपत्ति इस विषय में ला सकते है फिर भी कार्य करना अन्त में तो आपका ही कर्त्तव्य होगा। अतः जब तक आपकी चेतना सावधान है, तब तक निरन्तर स्वात्मस्वरूप चिन्तवन में लगा दो।

श्री परमेष्ठी का भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायक की ओर ही लक्ष्य रखना, क्योंकि मैं ज्ञाता द्रष्टा हूं, ज्ञेय भिन्न है, उनमेंइष्टानिष्ट विकल्प न हो, यही पुरुषार्थ करना और अन्तरङ्ग में मूर्च्छा न करना। रागादि भावों को तथा उनके वक्ताओं को दूर से ही त्यागना। मुझे आनन्द इस बात का है कि आप निःशल्य है। यही आपके कल्याण की परमौषधि है।

× × ×

महाशय !

योग्य शिष्टाचार !

आपके शरीर की अवस्था प्रत्यहं क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धि से हमारा कोई घात नही। क्योंकि आपने निरन्तर ज्ञानाभ्यास किया है, अतः आप इसे स्वयं जानते है अथवा मान भी लो, अथवा शरीर के शैथिल्य से तदवयवभूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती है तथा द्रव्येन्द्रिय के विकृतभाव से भावेन्द्रिय स्वकीय काय करने मे समर्थ नही होती है। किन्तु मोहनीय उपशमजन्य सम्यक्त्व की इसमें क्या विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उस काल जागृत अवस्था के समान ज्ञान नही रहता, किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण ससार का अन्तक है, उसका आंशिक भी घात नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यग्दर्शन माना है। जहाँ केवल तैजस कार्माण शरीर है, उत्तरकालीन शरीर की पूर्णता नही तथा आहारादि वर्गणा के ग्रहण का अभाव है वहा भी सम्यग्दर्शन का सद्भाव रहता है। अतः आप इस बात की रचमात्र आकुलता न करे कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्योंकि शरीर परद्रव्य है, उसके

सम्बन्ध से जो कार्य होने वाला है वह हो अथवा न हो, परन्तु जो वस्तु आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करने वाला कोई नही, उसकी रक्षा है तो संसार तट समीप ही है।

विशेष बात यह है कि चरणानुयोग की पद्धति से समाधि के अर्थ बाह्य सयोग अच्छे होना विधेय हैं, किन्तु परमार्थ दृष्टि से निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर हैं। आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियों का समागम रहे, किन्तु समाधिकर्ता को उनके उपदेश श्रवण कर विचार तो स्वयं करना पड़ेगा। जो मैं एक हूं, रागादि शून्य हूं, यह जो सामग्री देख रहा हू वह परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है परमात्मा के गुणगान से परमात्मा के द्वारा परमात्मपद की प्राप्ति नही, किन्तु परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने से ही उस पद का लाभ निश्चित है अत सब प्रकार की झंझटों को छोड कर भाई साहब! अब तो केवल वीतरागनिर्दिष्ट पथ पर ही आभ्यन्तर परिणाम से आरूढ़ हो जाओ। बाह्य त्याग को वहीं तक मर्यादा है जहा तक निज भाव मे बाधा न पहुचे।

अपने परिणामों के परिणमन को देख कर ही त्याग करना, क्योंकि जैन सिद्धान्त मे सत्य पथ मूर्छात्याग वाले के ही होता है। अतः जो जन्म भर मोक्षमार्ग का अध्ययन किया उसके फल का समय है, इसे सावधानतया उपयोग में लाना। यदि कोई महानुभाव अन्त में दिगम्बर पद की समति देवे तब अपनी अभ्यन्तर विचारधारा से कार्य लेना। वास्तव में अन्तरङ्ग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पद के पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये हैं, अन्यथा यह कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न करते। हीन शक्ति शरीर की दुर्बलता है। अभ्यन्तर श्रद्धा में दुर्बलता न हो, अतः निरन्तर यही भावना रखना—

'एगो में सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥'

अर्थ एक मेरी शाश्वत आत्मा ज्ञानदर्शन लक्षणमयी है, शेष तो बाहरी भाव हैं।

अतः जहाँ तक बने, स्वयं आप समाधानपूर्वक अन्य को समाधि का उपदेश करना कि जब समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है

तब यह कौन-सा विशिष्ट कार्य है। यह तो उन शत्रुओं को चूर्ण कर देता है जो अनन्त संसार के कारण हैं।

इस संसार में गोते खाने वाले जीवों को केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियों ने आश्रय लिया है वे अवश्य ही एक दिन पार होंगे। आपने लिखा कि हम मोक्षमार्ग प्रकाशक की दो प्रति भेजते हैं सो स्वीकार करना, भला ऐसा कौन होगा जो इसे स्वीकार न करे। कोई तीव्र कषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनंगीकार करे तो करे। परन्तु हम तो शतशः धन्यवाद देते हुए आपकी भेंट को स्वीकार करते हैं।

क्या करें, निरन्तर इसी चिन्ता में रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जब वास्तव में हम इसके पात्र हों। अभी हम इसके पात्र नहीं हुए हैं, अन्यथा तुच्छ बातो में नाना कल्पनाएं करते हुए दु खी न होते। अब भाई साहब! जहाँ तक बने, हमारा और आपका मुख्य कर्तव्य रागादिक दूर करने का ही निरन्तर रहना चाहिये। क्योंकि आगम ज्ञान और श्रद्धा मात्र से, बिना संयतत्वभाव के मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं, अत प्रयत्न का यही सार होना चाहिये, जो रागादिक भावों का अस्तित्व आत्मा में न रहे।

ज्ञान वस्तु का परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञान-निवृत्ति ज्ञान का फल है, किन्तु ज्ञान का फल उपेक्षा नही, उपेक्षा फल चारित्र का है। ज्ञान मे आरोप से वह फल कहा जाता है। जन्म भर मोक्षमार्ग विषयक ज्ञान का संपादन किया, अब एक बार उपयोग मे लाकर उसका आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोग का अभिप्राय लोगों ने परवस्तु के त्याग और ग्रहण में ही समझ रखा है, सो नहीं चरणानुयोग का मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिक के मेटने का है, परन्तु वह पर-वस्तु के सम्बन्ध से होते है अर्थात् पर-वस्तु उसका नोकर्म होती है, अत उसका त्याग करते है। मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओं के सम्बन्ध से भयभीत रहता है। मैं तो किसी के समागम की अभिलाषा नही करता हू। आपको भी संमति देता हू कि सबसे ममत्व हटाने की चेष्टा करो। यही पार होने की नौका है।

जब पर मे रागभाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहंबुद्धि घट जावेगी, क्योंकि ममत्व और अहकार का अविनाभाव सम्बन्ध है,

एक के बिना अन्य नहीं रहता। बाई जी के बाद मैंने देखा कि अब तो स्वतन्त्र हूं, दान में सुख होता होगा, इसे करके देखू। ६०००) रुपये मेरे पास था, सर्व त्याग कर दिया परन्तु कुछ भी शान्ति का अंश नहीं पाया। उपवासादिक करके शान्ति न मिली, पर की निन्दा और आत्म-प्रशंसा से भी आनन्द का अंकुर प्रस्फुटित नहीं हुआ। भोजनादि की प्रक्रिया से भी शान्ति का लेश नहीं पाया, अतः यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शान्ति की उद्‌भूति नही। तात्पर्य यही है कि सर्व व्यापार उसी के निवारण में लगा देना ही शान्ति का उपाय है। वाग्जाल के लिखने से कुछ भी सार नहीं है।

मैं यदि अन्तरङ्ग से विचार करता हूं तो जैसा आप लिखते हैं उसका पात्र नही क्योंकि पात्रता का नियामक कुशलता का अभाव है। वह अभी कोशो दूर है। हां, अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जायगा तब दुर्लभ भी नही, वक्तृत्वादि गुण तो आनुषङ्गिक हैं। श्रेयोमार्ग की निकटता जहां-तहां होती है वही वही वस्तु पूज्य है। अतः हम और आपको बाह्य वस्तुजात में मूर्छा की कृशता कर आत्मा तत्त्व को उत्कृष्ट बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यास का प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक सीमित नही होता, साथ ही पर पदार्थों से उपेक्षा भी होनी चाहिये। आगम ज्ञान की प्राप्ति और ही है और उसकी उपयोगिता का फल और ही है। मिश्री की प्राप्ति और स्वादुता में महान् अन्तर है। यदि स्वाद का अनुभव नहीं हुआ तब मिश्री पदार्थ का मिलना केवल अन्धे की लाल-टेन के सदृश हैं। अत अब यावान् (जितना) पुरुषार्थ है उसे कटिबद्ध होकर इसी में लगा देना श्रेयस्कर है जिससे आगमज्ञान के साथ उपेक्षा रूप स्वाद का लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है, परन्तु जो अर्जित कर्म हैं उनका फल तो मुझे ही चखना पड़ेगा अतः कुछ भी विषाद नहीं।

विषाद इस बातका है जो वास्तविक आत्मतत्त्व का घातक है, उसकी उपक्षीणता नहीं होती। उसके अर्थ निरन्तर प्रयास है। बाह्य पदार्थ का छोड़ना कोई कठिन नही, किन्तु अध्यवसान का छोड़ना कठिन है। क्योंकि अध्यवसान के कारण छूट जाने पर भी उसकी उत्पत्ति अन्तस्तल की वासना से होती रहती है। उस वासना के विरुद्ध शस्त्र चला कर उसका निपात करना यद्यपि उपाय निर्दिष्ट

किया है, परन्तु फिर भी वह क्या है ? केवल शब्दों की सुन्दरता छोड़ कर गम्य नहीं। दृष्टान्त तो स्पष्ट है—अग्निजन्य उष्णता जो जल में है उसकी भिन्नता तो दृष्टि का विषय है। यहाँ तो क्रोध से जो क्षमा की अप्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त हो। ऊपर से क्रोध न करना क्षमा का साधक नहीं। आशय में वह न रहे, यही तो कठिन बात है। रहा उपाय तत्त्वज्ञान, सो तो हम आप सब जानते ही हैं। फिर भी कुछ गूढ़ रहस्य है, जो महानुभावों के समागम की अपेक्षा रखता है, यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना हो उत्तम है। उसकी सेवा क्या है ? ज्ञाता द्रष्टा और जो कुछ अतिरिक्त है, वह विकृत जानना। × × ×

श्रीमान् वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार !

पत्र न देने का कारण उपेक्षा नहीं किन्तु अयोग्यता है। मैं जब अन्तरङ्ग से विचार करता हू तो उपदेश देने की कथा तो दूर रही, अभी मैं सुनने और बांचने का भी पात्र नहीं। वचन चतुरता से किसी को मोहित कर लेना पाण्डित्य का परिचायक नहीं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है—

> कि काहदि वणवासो काय किलेसो विचित्तउववासो।
> अज्झयमौणप्पहुदी समदारहियस्स समणस्स ॥

समता के बिना बनवास और काय क्लेश, नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नहीं। अत इन बाह्य साधनों का मोह व्यर्थ ही है। दीनता ओर स्वकार्य मे अतत्परता ही मोक्षमार्ग का घातक है। जहां तक हो, इस पराधीनता के भावों का उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझ में नहीं आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखने की होती है, परन्तु स्वकीय वास्तविक दशा पर दृष्टि जाती है तब अश्रुधारा का प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन् ! तूने यह मानवपर्याय पाकर भी निज तत्त्व की ओर लक्ष्य नहीं दिया। केवल इन बाह्य पञ्चेन्द्रिय विषयों की प्रवृत्ति में ही संतोष मान कर संसार का क्या, अपने स्वरूप का अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विषयक अभिलाषा की अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्ग में संवर तत्त्व ही मुख्य है। तत्त्व की महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्य आगम अथवा जीवन शून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुख की तरह है। अतः जिन जीवों को मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि अभिलाषाओं के अनुत्पादक चरणानुयोग पद्धति-प्रतिपादित साधनों की ओर लक्ष्य स्थिर कर निरन्तर स्वात्मोत्थ सुखामृत के अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओं की प्रबल सेना का विध्वंस करने में भगीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे, किन्तु व्यर्थ न जावे, इसमें यत्नशील होना चाहिये। वहां तक पूर्ण प्रयत्न करना उचित है ? जहाँ तक पूर्णज्ञान की पूर्णता न होय।

"भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम्।"

अर्थ—यह भेदविज्ञान अखण्डधारा से तब तक भावो कि जब तक परद्रव्य से रहित होकर ज्ञान-ज्ञान में (आपने स्वरूप मे) ठहरे।

क्योंकि सिद्धि का मूल मन्त्र भेद विज्ञान ही है। वही आत्म-तत्त्वरसवादी श्री अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है—

"भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥"

अर्थ—जो कोई भी सिद्धि हुए हैं वे भेदविज्ञान से ही सिद्ध हुए है और जो बँधे हैं वे भेद विज्ञान के न होने से ही बन्ध को प्राप्त हुए हैं।

अत अब इन परनिमित्तक श्रेयोमार्ग की प्राप्ति के प्रयत्न में समय का उपयोग न करके स्वावलम्बन की ओर दृष्टि ही इस जर्जरा-वस्था में महती उपयोगिनी रामवाणतुल्य अचूक औषधि है। तदुक्तम्—

'इतो न किञ्चित्ततो न किंचित्, यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित्॥

अर्थ—इस तरफ कुछ नहीं है तथा जहां-जहां मैं जाता हूं वहां-वहां भी कुछ नहीं है। स्वकीय आत्मज्ञान से बढ़कर कोई नहीं है।

इसका भाव यह है कि विचार स्वावलम्बन का शरण ही संसार बन्धन के मोचन का मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो सांवर

ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र का मूल है।

मिथ्यात्व की अनुत्पत्ति का नाम ही सम्यग्दर्शन है, अज्ञान की अनुत्पत्ति का नाम सम्यग्ज्ञान, तथा रागादि की अनुत्पत्ति यथाख्यात-चारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है अतः सवर ही दर्शन-ज्ञान-चारित्राराधना के व्यपदेश को प्राप्त करता है। तथा इसी का नाम तप है, क्योंकि इच्छा निरोध का नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि इच्छा का न होना ही तप है अतः तप आराधना भी यही है। इस प्रकार सवर ही चार आराधना है अतः जहां पर से श्रेयोमार्ग की आकांक्षा का त्याग है वहा पर श्रेयोमार्ग है।

× × ×

श्रीयुत महानुभाव प० दीपचन्द्रजी वर्णी,

इच्छाकार !

अनुकूल कारणकुट के असद्भाव में पत्र नहीं दे सका। क्षमा करना आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है अब हमें आवश्यकता इस बात की है कि प्रभु के उपदेश के पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु के समान प्रभुता के पात्र हो जावें। यद्यपि अध्यवसान भाव पर-निमित्तक है। यथा—

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन् निमित्तं परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत्॥

अर्थ – आत्मा, आत्मा सम्बन्धी रागादिक की उत्पत्ति में स्वयं कदाचित् निमित्तता को प्राप्त नही होता है अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिक के उत्पन्न होने में अपने आप निमित्त कारण नहीं हैं किन्तु उनके होने में परवस्तु ही निमित्त है। जैसे अर्ककान्तमणि स्वय अग्नि-रूप नही परिणमता है किन्तु सूर्य किरण उस परिणमन मे निमित्त कारण है। यद्यपि यह सव है तथापि परमार्थ तत्त्व की गवेषणा में वे निमित्त क्या वलात्कार अध्यवसानभाव के उत्पादक हो जाते है ? नही, किन्तु हम स्वय अध्यवसान द्वारा उन्हें विषय करते हैं। जब ऐसी वस्तु मर्यादा है तब पुरुषार्थ उन ससारजनक भावो के नाश का उद्यम करना ही हम लोगों का इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोग की पद्धति मे निमित्त की मुख्यता से व्यख्यान होता है और अध्यात्मशास्त्र मे पुरुषार्थ की मुख्यता तथा उपादान की मुख्यता से व्याख्यान पद्धति है। और प्रायः हमें इसी परिपाटी का अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा।

शरीर की क्षीणता यद्यपि तत्त्वज्ञान में बाह्य दृष्टि से कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियों की प्रवृत्ति में उतना बाधक नहीं हो सकती। यदि वेदना की अनुभूति में विपरीतता की कणिका न हो तब मेरी समझ में हमारी ज्ञान चेतना की कोई क्षति नहीं है

विशेष नहीं लिख सका। आजकल यहां मलेरिया का प्रकोप है। प्रायः बहुत से इसके लक्ष्य हो चुके हैं। आप लोगों की अनुकम्पा से मैं अभी तक तो किसी आपत्ति का पात्र नहीं हुआ। कल की दिव्यज्ञानी जाने। अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखने की चेष्टा करूंगा।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी,

योग्य इच्छाकार !

आपका पत्र आया। आपके पत्र से मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्र से हर्ष होता है, यह केवल मोहज परिणाम की वासना है। आपके साहस ने आपमें अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको संसार-योजनाओं से मुक्त करेगी। कहने, लिखने और वाक्चातुर्य में मोक्ष मार्ग नहीं। मोक्षमार्ग का अकुर तो अन्तःकरण से निज पदार्थ में ही उदित होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन काय क्या जाने। यह तो पुद्गलद्रव्य की पर्यायों ने ही नाना प्रकार के नाटक दिखा कर उस ज्ञाता द्रष्टा को इस संसारचक्र का पात्र बना रक्खा है। अतः अब दीप से तमोराशि को भेद कर और चन्द्र से परपदार्थ जन्य आताप का शमन कर सुधासमुद्र मे अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होने की योग्यता के पात्र बनिये। वह पात्रता आप में है। केवल साहस करने का विलम्ब है। अब इस अनादि संसार-जनमी कायरता को दग्ध करने से ही कार्यसिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करने से क्या लाभ? लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धि से है। विशुद्धि का प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञान का कारण निरन्तर अध्यात्मग्रन्थों की चिन्तना है। अतः इस दशा में परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीति से इस ग्रंथ में संलग्न हो जाता है। उपक्षीण काय में विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्य का बाधक होता है अतः आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्मध्यान में अपना समययापन कीजिए। शरीर की दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्रायः सबकी है। परन्तु कोई भीतर से दुखी है तो कोई बाह्य से

दुखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तव में अघातिकर्म-असातावेदनीयजन्य है वह आत्मगुण घातक नहीं। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है, जो कि आत्मगुण घातक है। अतः आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दु ख के पात्र नही। आपको अब बड़ी प्रसन्नता इस तत्त्व की होनी चाहिए, जो मैं आभ्यन्तर रोग से मुक्त हूँ।

प० छोटेलाल जी से दर्शनविशुद्धि ! भाई साहब एक धर्मात्मा और साहसी वीर हैं। उनकी परिचर्या करना वैयावृत्यरूप है, जो निर्जरा का हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नहीं जो इतने धीर, वीर, वरवीर, दु खसीर बन्धु की सेवा कर सकें।। × × ×

श्रीयुत वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार !

पत्र मिला। मैं बराबर आपकी स्मृति रखता हूं, किन्तु ठीक पता न होने से पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा, आप धर्मात्माओं के प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभु के चरणप्रसाद से बहुत ही उत्तम भावो से हुई। मार्ग में अपूर्व शान्ति रही। कटक भी नही लगा तथा आभ्यन्तर की भी अशान्ति नहीं हुई। किसी दिन तो १६ मील तक चला। खेद इस बात का रहा कि आप और बावा जी साथ में न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहा ?

बन्धुवर ! आप श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, समाधिशतक और समयसार का ही स्वाध्याय करिये और विशेष त्याग के विकल्प में न पड़िये। केवल क्षमादिक परिणामों के द्वारा ही वास्तविक आत्मा का हित होता है। काय कोई वस्तु नही तथा आप हो स्वयं कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प। भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक है उन्हें आप स्वय त्याग रहे हैं। मेरी तो यही भावना है— प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्मा को इस बन्धन के तोड़ने में अपूर्व सामर्थ्य दें।

आपके पत्र से आपके भावों की निर्मलता का अनुमान होता है। स्वतन्त्र भाव ही आत्मकल्याण का मूलमन्त्र है। क्योंकि आत्मा वास्तविक दृष्टि से तो सदा शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव वाला है। कर्म कलंक से ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करने की जो विधि है उस पर आप आरूढ़ है। बाह्य क्रिया की त्रुटि आत्मपरिणाम का बाधक

नहीं, और न मानना ही चाहिए। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा और गर्हा करता है, वह अशुद्धोपयोग की है, न कि मन की या मन, वचन, काय के व्यापार की। इस पर्याय में हमारा आपका सम्बन्ध न भी हो। परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तर में अवश्य मिलेंगे। अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार अवश्य एक मास में एक बार दिया करें। मेरी आपके भाई से दर्शन विशुद्धि !

× × ×

श्रीयुत धर्मरत्न पण्डित दीपचन्द्र जी,

इच्छामि !

पत्र पढ़ कर सतोष हुआ, तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रवण प्रत्यक्ष करा दिया। सब लोग आपके आंशिक रत्नत्रय की भूरिश: प्रशसा करते है।

आपने जो पं० भूधरदास जी की कविता लिखी सो ठीक है। परन्तु वह कविता आपके ऊपर नही घटती। आप शूर हैं। देह की दशा, जैसी कवि ने कविता मे प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमें हमारा क्या घात हुआ ? यह हमारे बुद्धिगोचर नही हुआ। घट के घात से दीपक का घात नहीं होता। पदार्थ का परिचायक ज्ञान है। अत ज्ञान में ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या ज्ञान तद्रूप हो गया ?

पूर्णकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं,
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीप: प्रकाश्यादपि।
तद्वस्तुस्थितिबोधबन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो,
रागद्वेषमया भवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥

अर्थ—पूर्ण, अद्वितीय, नही च्युत है शुद्ध बोध की महिमा जाकी, ऐसा जो बोद्धा है वह कभी भी बोध्य पदार्थ के निमित्त से प्रकाश्य (घटादि) पदार्थ से प्रदीप की तरह कोई भी विक्रिया को प्राप्त नहीं होता है। इस मर्यादा विषयक बोध से जिसकी बुद्धि बन्ध्या है वे अज्ञानी हैं। वे ही राग-द्वेषादिक के पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते हैं।

आप विज्ञ है अत: कभी भी इस असत्य भाव को आलम्बन न देवेंगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते हैं और मरेंगे। इससे क्या आया ? एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमें कौनसी

आश्चर्य की घटना है। इसका तो आप जैसे विज्ञ पुरुषों को विचार कोटि से पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाता कर्म के उदय आदि कारण कूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञान में आयी। वेदना क्या वस्तु है? परमार्थ से विचारा जाय तो यह एक तरह से सुख गुण में विकृति हुई वह हमारे ध्यान में आयी। उसे हम नहीं चाहते। इसमें कौन-सी विपरीतता? विपरीतता तो तब होती है जब उसे हम निज मान लेते हैं। विकारज-परिणति को पृथक् करना अप्रशस्त नहीं। अप्रशस्तता तो यदि हम उसी का निरन्तर चिन्तवन करते रहें और निजत्व को विस्मृत कर जावे, तब है।

अतः जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदरभाव से व्यवहार कर ऋणमोचन पुरुष की तरह आनन्द से साधु की तरह प्रवृत्ति करना चाहिये। निदान को छोड़कर आर्तत्रय षष्ठ गुणस्थान तक होते है। थोड़े समय तक अर्जित कर्म आया फल देकर चला गया। अच्छा हुआ, आकर हलकापन कर गया। रोग का निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मति में निकलना, रहने की अपेक्षा प्रशस्त है। इसी प्रकार आपको असाता यदि शरीर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था द्वारा निकल रही है तब आपको बहुत आनन्द मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी नही निकलती तब क्या स्वर्ग में निकलती? मेरी दृष्टि में केवल असाता ही नही निकल रही, साथ ही मोह की अरति आदि प्रकृतियां भी निकल रही हैं। क्योंकि आप इस असाता को सुखपूर्वक भोग रहे हैं। शान्तिपूर्वक कर्मो के रस को भोगना आगामी दुःखकर नहीं।

बहुत कुछ लिखना चाहता हूं परन्तु ज्ञान की न्यूनता से लेखनी रुक जाती है। बन्धुवर! मैं एक बात को आपसे जिज्ञासा करता हूं, जितने लिखने वाले और कथन करने वाले तथा कथन कर बाह्य चरणानुयोग के अनुकूल प्रवृत्ति करने वाले तथा आर्ष वाक्यों पर श्रद्धालु व्यक्ति हुए हैं, अथवा हैं तथा होंगे, वे क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं? मेरी तो श्रद्धा नहीं। अन्यथा श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है कि हे प्रभो! "हमारे शत्रु को भी द्रव्यलिङ्ग न हो" इस वाक्य की चरितार्थता न होती तो काहे को लिखते। अत पर की प्रवृत्ति देख रंचमात्र भी विकल्प को आश्रय न देना ही हमारे लिये हितकर है। आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नहीं, जो आत्महित करने वाले हैं वे सिर

पर आग लगाने पर तथा सर्वाङ्ग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यन्त्रादि द्वारा उपद्रव होने पर भी मोक्ष लक्ष्मी के पात्र होते हैं। मुझे तो इस आपकी आस्था और श्रद्धा देख कर इतनी प्रसन्नता होती है। प्रभो ! यह अवसर सर्व को दें। आपकी केवल श्रद्धा ही नहीं किन्तु आचरण भी अन्यथा नही। क्या मुनि को जब तीव्र व्याधि का उदय होता है, तब बाह्य चरणानुयोग आचरण के असद्भाव में उनके छठवां गुणस्थान चला जाता है ? यदि ऐसा है तो उमे समाधि मरण के समय 'हे मुने ! इत्यादि संबोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार संगत होगा ? पीड़ा आदि में चित्त चंचल रहता है, इसका क्या यह आशय है—पीड़ा का बार-बार स्मरण हो जाता है। हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और उसकी धारणा होती है, उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथ में यह भाव तो रहता है—यह चंचलता सम्यक् नहीं। परन्तु मेरी समझ में इस पर भी गम्भीर दृष्टि दीजिये। चंचलता तो कुछ बाधक नहीं। साथ में उसके आरति का उदय और असाता की उदीरणा से दुःखानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करने की भावना रहती है। इसी से इसे महर्षियों ने आर्त्तध्यान की कोटी में गणना की है। इस भाव के होने से पञ्चम गुणस्थान मिट जाता है ? यदि इस ध्यान के होने पर देश व्रत के विरुद्ध भाव का उदय श्रद्धा में न हो तब मुझे तो दृढतम विश्वास है कि गुणस्थान की कोई भी क्षति नही। तरतमता ही होती है, वह भी उसी गुणस्थान में। ये विचारे जिन्होंने कुछ नही जाना, कहां जावेगे, क्या करें, इत्यादि विकल्पों के पात्र होते हैं—कही जाओ, हमें उसकी मीमांसा से क्या लाभ ? हम विचारे इस भाव से कहाँ जावेगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानन्द, जंसा आपको निर्मल दृष्टि ने निर्णीत किया है, द्रव्यदृष्टि से वैसा ही है परन्तु द्रव्य तो भोग्य नही, भोग्य तो पर्याय है, अतः उसके तात्त्विक स्वरूप के जो बाधक हैं, उन्हें पृथक करने की चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोर की सजा देख कर साधु को भय होना मेरे ज्ञान में नहीं आता अतः मिथ्यात्वादि क्रियासंयुक्त प्राणियों का पतन देख हमें भय होने की कोई भी बात नहीं। हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रय की

तलवार हाथ में आ गई है और वह यद्यपि वर्तमान में भौथरी धार वाली है परन्तु है तो तलवार। कर्मेन्धन को धीरे-धीरे छेदेगी, परन्तु छेदेगी ही। बड़े आनन्द से जीवनोत्सर्ग करना। अंश मात्र भी आकुलता श्रद्धा में न लाना। प्रभु ने अच्छा ही देखा है। अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते। समाधिमरण के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, क्या पर निमित्त ही हैं ? नहीं।

जहां अपने परिणामों में शान्ति आई वही सर्व सामग्री है। अतः हे भाई! सर्व उपद्रवों के हरण में समर्थ और कल्याणपथ के कारणों में जो आपकी दृढतम श्रद्धा है वह उपयोगिनी तथा कर्मशत्रुवाहिनी की जयनशीला तीक्ष्ण असि-धारा है। मैं तो आपके पत्र पढ़ कर समाधि-मरण की महिमा अपने ही द्वारा होती है, निश्चय कर चुका हूं। क्या आप इससे लाभ न उठावेंगे ? अवश्य ही उठावेंगे।

नोट—मैं विवश हो गया। अन्यथा अवश्य आपके समाधि मरण में सहकारी हो पुण्य लाभ करता। आप अच्छे स्थान पर ही जावेंगे। परन्तु यहा पचम काल है अत हमारे सबोधन के लिए आपका उप-योग ही इस ओर न जावेगा। अथवा जावेगा ही तब कालकृत असम-र्थता बाधक होकर आपको शान्ति देगी। इससे कुछ उत्तर काल की भावना नही करता।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी,

योग्य इच्छाकार !

बन्धुवर ! आपका पत्र पढ़कर मेरी आत्मा मे अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्था में दृढ़ श्रद्धालु हो गये है। यही संसार से उद्धार का प्रथम प्रयत्न है। काय की क्षीणता कुछ आत्म-तत्त्व की क्षीणता में निमित्त नही, इसको आप समीचीनतया जानते हैं। वास्तव में आत्मा के शत्रु तो राग, द्वेष और मोह है। जो इसे निरन्तर इस दुःखमय संसार में भ्रमण करा रहे हैं। अतः आवश्यकता इसकी है जो राग-द्वेष के अधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्द की ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि भाव होवें, इसका कुछ भी रंज नहीं करना चाहिए। रागादिकों का होना रुचिकर नही होना चाहिए। बड़े-बड़े ज्ञानी जनों के राग होता है परन्तु उस राग में रंजकता के अभाव से

आगे उसकी परिपाटी-रोध का आत्मा को अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकों की सन्तान का उपचय होते-होते एक दिन समूलतल से उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इस संसार की वासनाओं का पात्र नही होता। मैं आपको क्या लिखूं ? यही मेरी सम्मति है—जो अब विशेष विकल्पों को त्याग कर जिस उपाय से राग-द्वेष का आशय में अभाव हो वही आपका व मेरा कर्तव्य है। क्योंकि पर्याय का अवसान है। यद्यपि पर्याय का अवसान तो होगा ही फिर भी संबोधन के लिए कहा जाता है तथा मूढ़ों को वास्तविक पदार्थ का परिचय न होने से बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है।

विचार से देखिये—तब आश्चर्य को स्थान नही। भौतिक पदार्थों की परिणति देखकर बहुत से जन क्षुब्ध हो जाते हैं। भला, जब पदार्थ मात्र अनन्त शक्तियों का पुञ्ज है, तब क्या पुद्गल में यह बात न हो, यह कहां का न्याय है ? आजकल विज्ञान के प्रभाव को देख लोगों की श्रद्धा पुद्गल द्रव्य में ही जागृत हो गई है। भला यह तो विचारिये, उसका उपयोग किसने किया ? जिसने किया उसको न मानना यही तो जड़भाव है।

बिना रागादिक के कार्मण वर्गणा क्या कर्मादिरूप परिणमन को समर्थ हो सकती है ? तब यों कहिये--अपनी अनन्त शक्ति के विकास का बाधक आप ही मोहकर्म द्वारा हो रहा है। फिर भी हम ऐसे अन्धे हैं जो मोह की ही महिमा आलाप रहे है। मोह में बलवत्ता देने वाली शक्तिमान् वस्तु की ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाव वाले पदार्थ को कि जिसकी वक्रदृष्टि से यह जगत् अनादि से बन रहा है। और जहा उसने वक्रदृष्टि को संकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टि का अवलम्बन किया कि इस ससार का अस्तित्वही नही रहता। सो ही समयसार मे कहा है—

कषाय कलिरेकतः शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः॥

अर्थ—एक तरफ से कषायकालिमा स्पर्श करती है और एक तरफ से शान्ति स्पर्श करती है। एक तरफ संसार का आघात है और

एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनों लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतज्ञ आत्मा प्रकाश कर रहा है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आत्मा की स्वभाव महिमा अद्भुत से अद्भुत विजय को प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावों से यही अन्तिम कर्ण-प्रतिभा का विषयहोता है जो आत्मद्रव्य की ही विचित्र महिमा है। चाहे नाना दुःखाकीर्ण जगत् में नाना वेष धारण कर नटरूप बहुरूपिया बने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीला का सम्वरण करके गगनवत् पारमार्थिक निर्मल स्वभाव को धारण कर निश्चल तिष्ठे। यही कारण है। 'सर्व वै खल्विदं ब्रह्म'—यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, इस में कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोड़ देवे तब जो कथन है अक्षरशः सत्य भासमान होने लगे। एकान्त दृष्टि ही अन्ध दृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रम से कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पञ्च स्थावर और त्रस का समुदाय जगत् दृश्य हो रहा है, क्या है? क्या ब्रह्म का विकार नहीं? अथवा स्वमत की ओर कुछ दृष्टि का प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारण की मुख्यता से जो ये रागादिक परिणाम हो रहे हैं, क्या उन्हे पौद्गलिक नही कहा है? अथवा इन्हे छोड़िये। जहां अवधि ज्ञान का विषय निरूपण किया है वहां क्षयोपशम-भाव को भी अवधिज्ञान का विषय कहा है। अर्थात् पुद्गलद्रव्य सम्बन्धेन जायमानत्वात् क्षायोपशमिकभाव भी कथंचित् रूपी है। केवलज्ञान का भाव अवधिज्ञान का विषय नहीं, क्योंकि उसमें रूपी द्रव्य का सम्बन्ध नहीं है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि औदयिकभाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथंचित् पुद्गल सम्बन्धेनजायमान होने से मूर्तिमान हैं न कि रूपरसादिमत्ता इनमें है। तद्वत् अशुद्धता के सम्बन्ध से जायमान होने से यह भौतिक जगत् भी कथंचित् ब्रह्म का विकार है। कथंचित् का यह अर्थ है—

जीव के रागादिक भावों के ही निमित्त को पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादि रूप परिणमन को प्राप्त है। अतः यह जो मनुष्यादि पर्याय है वह दो असमानजातीय द्रव्य के सम्बन्ध से निष्पन्न है। न केवल जीव की है और न केवल पुद्गल की है। किन्तु जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से जायमान है। तथा यह जो रागादि परिणाम है वे न तो केवल जीव के ही है और न केवल पुद्गल के हैं। किन्तु उपादान की अपेक्षा तो जीव के हैं और निमित्त कारण की अपेक्षा पुद्गल के है।

और द्रव्यदृष्टि कर देखें तो न पुद्गल के हैं और न जीव के हैं। शुद्ध द्रव्य के कथन में पर्याय की मुख्यता नहीं रहती अतः यह गौण हो जाते हैं। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनों के द्वारा संपन्न होती है। अस्तु, इससे यह निष्कर्ष निकला, यह जो रागादिक पर्याय है, वह केवल जीव की नहीं, किन्तु पौद्गलिक मोह के उदय से आत्मा के चारित्र गुण में जो विकार होता है तद्रूप है। अतः हमें यह नहीं समझना चाहिये कि हमारी इसमें क्या क्षति है ? क्षति तो यह हुई जो आत्मा की वास्तविक परिणति थी वह विकृत भाव को प्राप्त हो गई। परमार्थ से क्षति का यह आशय है कि आत्मा में जो रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवें। तब जो उन दोषों के निमित्त से यह जीव किसी पदार्थ में अनुकूलता और किसी में प्रतिकूलता की कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभाव में आकुलित रहता था, शान्ति के आस्वाद की कणिका को भी नहीं पाता था। अब उन रागादिक दोषों के असद्भाव में आत्मगुणरूप चारित्र की स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्त को अवलम्बन कर आत्मा का जो चेतना नामक गुण है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थों का तद्रूप हो द्रष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकम्प रहता है। इसी का नाम भावमुक्ति है।

अब आत्मा में मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई, किन्तु अभी जो योगनिमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेश प्रकम्पन को करता ही रहता है तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी साता वेदनीय का हुआ करता है। यद्यपि इसमें आत्मा के स्वाभाविक भाव की क्षति नहीं, फिर भी निरपवर्त्यआयु के सद्भाव में यावत् आयु के निषेक है तावत् भावस्थिति को मेंटने को कोई भी क्षम नहीं। जब अन्तर्मुहूर्त आयु का अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्म की स्थिति अधिक रहती है तब—उस काल में तृतीय शुक्ल ध्यान के प्रसाद से दण्ड कपाटादि द्वारा शेष कर्मों की स्थिति को आयु सम कर चतुर्दश गुणस्थान का आरोहण कर अयोग नाम को प्राप्त करता हुआ लघु पंचाक्षर के उच्चारण कालसम गुण स्थान का काल पूर्ण कर चतुर्थ शुल्क ध्यान के प्रसाद से शेष प्रकृतियों का नाश कर परम यथा ख्यात

चारित्र का लाभ करता हुआ एक समय में द्रव्यमुक्ति व्यपदेशता का लाभ कर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मी का भोक्ता होता हुआ लोकशिखर में विराजमान होकर तीर्थकर प्रभु के ज्ञान का विषय हो कर हमारे कल्याण में सहायक हो, यही हम सब की अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भगीरथ जी महाराज आ गये, उनका आपको सस्नेह इच्छाकार। खेद इस बात का विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। यदि होती तो हमें भी आपकी वैयावृत्य करने का अवसर मिल जाता, परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहां? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पंचम गुणस्थानवर्ती जीव की प्राप्ति हो सके।

आपके स्वास्थ्य में आभ्यन्तर तो क्षति है नहीं, जो है सो बाह्य है। उसे आप प्राय: वेदन नहीं करते यही सराहनीय है। धन्य है आपको—जो इस रुग्णावस्था में भी सावधान हैं। होना ही श्रेयस्कर है। शरीर की अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान-हीयमान होने से अध्रुव और शीत-दाह-ज्वारावेशवत् अनित्य है। ज्ञानीजन को ऐसा जानना ही मोक्षमार्ग का साधक है। कब ऐसा समय आवेगा जब इसमें वेदना का अवसर ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा, जब आप निःश्चल वृत्ति के पात्र होवेंगे। अब अन्य कार्यों मे गौणभाव धारण कर सल्लेखना के ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखने की चुलबुल उठे तब उसी पर लिखने की मनोवृत्ति की चेष्टा कीजिये। मैं आपकी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु इस समय ऐसा भाव, जैसा कि आपका है, प्रशस्त है।

पत्र मिल गया, पत्र न देने का अपराध क्षमा करना।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी साहब!

योग्य इच्छाकार

पत्र से आपके शारीरिक समाचार जाने, अब यह जो शरीर पर है, शायद इससे अल्प ही काल में आपकी पवित्र भावनार्थ आत्मा का सम्बन्ध छूट कर वैक्रियिक शरीर से हो जावे। मुझे यह दृढ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीर में होगी, न कि आत्मचिन्तन में। यद्यपि मोह के सद्भाव से विकलता की सम्भावना है तथापि प्रबल

मोह के अभाव में वह आत्मचिन्तन का आंशिक भी बाधक नहीं हो सकती। मेरी तो दृढ़ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे और अन्त तक दृढ़तम परिणामों द्वारा इन क्षुद्र बाधाओं की ओर ध्यान भी न देंगे यह अवसर संसारलतिका के घात का है।

देखिये, जिस असातादि कर्मों की उदीरणा के अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्र तप धारण करते-करते शरीर को इतना बना देते हैं, जो पूर्व लावण्य का अनुमान भी नहीं होता। परन्तु आत्मदिव्य शक्ति से भूषित ही रहते है। आपका धन्य भाग्य है जो बिना ही निर्ग्रन्थ पद धारण के कर्मों का ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदय में आकर पृथक हो रहे है। इसका जितना हर्ष मुझे है वह मैं नहीं कह सकता, वचनातीत है।

आपके ऊपर से भार पृथक् हो रहा है फिर आपके सुख की अनुभूति तो आप ही जाने। शान्ति का मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव हैं जो कि इस समय आपके हो रहे हैं। अब केवल स्वात्मानुभव ही रसायन-परमौषधि है। कोई-कोई तो क्रम-क्रम से अन्नादि का त्याग कर समाधिमरण का यत्न करते हैं आपके पुण्योदय से वह स्वयमेव छूट गया है। वही न छूटा, साथ-साथ असातोदय द्वारा दुःखजनक सामग्री का भी अभाव हो रहा है। अतः हे भाई! आप रंचमात्र क्लेश न करना, जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्मा को लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्द का क्या अवसर होगा? मुझे अन्तरङ्ग से इस बात का पश्चात्ताप हो जाता है जो अपने अन्तरङ्ग बन्धु की ऐसी अवस्था में वैयावृत्य न कर सका।

माघवदी १४ सं० १९९१

आ० शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी